14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 222

विस्थापन का बोझ ढोती स्त्रियाँ

विकास परियोजनाओं की एक नारीवादी समीक्षा

मुस्कान

उपयोगितावादी सिद्धांत के चश्मे से देखने पर लगता है कि अगर देश के विकास के लिए कुछ लोगों को विस्थापित भी होना पड़े तो इसमें कोई हर्ज नहीं। अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की व्यवस्था करने की प्रक्रिया में ऐसा सम्भव है कि कुछ लोगों को विकास की क़ीमत चुकानी पड़े। लेकिन क्या एक आदर्श लोकतंत्र इसकी इजाज़त देगा? किसी को उसकी ज़मीन, उसके परिवेश से उखाड़ फेंकना क्या लोकतंत्र की रीढ़ पर प्रहार करने जैसा नहीं है, भले ही वह व्यापक आबादी के हित में ही क्यों न हो? इस शोध-पत्र में भारतीय लोकतंत्र के वैकासिक आग्रहों को स्त्री-विस्थापितों की नज़र से परखने की कोशिश की गयी है।

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 223

भारत के लिए विकास मूलभूत अनिवार्यता है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप विस्थापन[1] एक विकराल समस्या बन कर हमारे सामने खड़ा हो गया है। यह एक ऐसी कड़वी सच्चाई है जिसने भारत में लोकतंत्र, न्याय, समानता और विकास जैसी बुनियादी संकल्पनाओं की वास्तविकता को प्रश्नांकित कर दिया है। आज़ादी के बाद भारत में विकास की अनगिनत परियोजनाओं से देश को एक मज़बूत आर्थिक आधार अवश्य मिला है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि बाँध, सड़क-निर्माण, शहरीकरण, ख़नन, उद्योग जैसी परियोजनाओं के कारण आबादी के एक बड़े हिस्से को विस्थापन की पीड़ा झेलनी पड़ी है। केवल बाँधों के कारण ही आज़ादी के बाद से ले कर अब तक निर्मित लगभग 5,100 बाँधों से लगभग साढ़े पाँच करोड़ लोगों को अपनी ज़मीन और अपने बसेरों से विस्थापित होना पड़ा है।[2]

विस्थापन पर किये गये कई अनुसंधान समग्र रूप से बताते हैं कि विकास की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया की सबसे ज़्यादा क़ीमत आदिवासी- वनवासी समुदायों को अपने जल-जंगल-ज़मीन से विस्थापित होकर चुकानी पड़ी है।[3] सरदार सरोवर बाँध परियोजना के संदर्भ में नर्मदा बचाओ आंदोलन की प्रणेता मेघा पाटकर के अनुसार, 'विस्थापितों में लगभग आधी आबादी ग़रीबों और आदिवासियों की है, जिसने विस्थापन की सबसे ज़्यादा क़ीमत चुकाई और फ़ायदे के नाम पर अपने घर और समाज से विस्थापित हो गये।'[4] एस. परशुरामन ने विस्थापन पर किये गये लम्बे शोध के बाद अपनी पुस्तक *द डिवेलपमेंट डिलेमा* में बताया है कि 'विस्थापन के कारण अनेक ग्रामीण और आदिवासी समुदाय न केवल बेघर हुए बल्कि उन्हें अपने परम्परागत पेशों से भी वंचित होना पड़ा। ख़ासकर ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियाँ, जो प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह निर्भर थीं, विस्थापन के बाद दूसरों के घरों में नौकरानी बनने को विवश हो गयीं।'[5] विस्थापन ने न केवल इनकी ज़मीन, इनका रोज़गार छीन लिया, बल्कि साथ ही इनसे सम्मान व गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार भी छीन लिया।

1991 के बाद से उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया के चलते विस्थापन की प्रक्रिया में अभूतपूर्व तेज़ी देखने को मिली है। उदारीकरण की शुरुआत से ही सरकारों द्वारा केवल अधिकाधिक आर्थिक संवृद्धि को ही 'सार्वजनिक हित' की कुंजी के रूप में स्वीकार किया गया। उदारीकृत भारत में 'विकास' की जो अर्थकेंद्रित परिभाषा गढ़ी गयी उसके तहत कुल घरेलू उत्पाद में ऊँची वृद्धि, ज़्यादा से ज़्यादा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की प्राप्ति, उच्चतम प्रति व्यक्ति आय सरकार के प्राथमिक लक्ष्य बन गये। 2005 में निर्मित सेज़ क़ानून (विशेष आर्थिक क्षेत्र एक्ट, 2005) इसका एकदम सटीक उदाहरण है।[6]

सेज़ क़ानून के तहत राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय उद्योगपतियों और कॉरपोरेट घरानों को स्वतंत्र आर्थिक क्रियाएँ करने के लिए रियायती दरों पर ज़मीन मुहैया कराने की नयी प्रथा शुरू की गयी। सरकार द्वारा किसानों, ग्रामीणों, आदिवासियों की ज़मीनों को औने-पौने दामों पर लेकर उन्हें कॉरपोरेट सेक्टर को सौंपा जाने लगा। सरकार ने तर्क दिया कि इससे ज़्यादा से ज़्यादा राजस्व तथा एफडीआई की प्रति

---

[1] विस्थापन से यहाँ तात्पर्य विकास के लिए स्थापित बड़ी परियोजनाओं के कारण होने वाला बाध्यकारी विस्थापन है. विशेष रूप से आर्थिक संवृद्धि के लिए स्थापित परियोजनाओं के परिणामस्वरूप होने वाला विस्थापन.

[2] देखें, मेधा पाटकर (2009), लाइला मेहता (सम्पा.) : XIII-XX.

[3] वही.

[4] वही.

[5] एस. परशुरामन (1999) : 211.

[6] विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम (सेज़ एक्ट 2005), 2005.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 224

होगी। विडम्बना यह रही कि इस प्रक्रिया का दुष्परिणाम झेल रहे विस्थापितों के पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन का मुद्दा सरकार के एजेण्डे से लगभग गायब हो गया।

इसी घटनाक्रम का परिणाम है कि आज विस्थापन के विरोध और न्यायपूर्ण पुनर्वास की माँग को ले कर खड़े हुए जन आंदोलन दिन-प्रतिदिन उग्रतम रूप धारण करते जा रहे हैं। ओडिशा की पॉस्को परियोजना के विरोध में खड़ा आंदोलन इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। निराशाजनक स्थिति यह है कि राज्य, जिसका कर्तव्य है कि वह परियोजना स्थल के स्थानीय समुदायों की आपत्तियों-चिंताओं को सुन कर उनका हल निकाले, अपनी शक्ति का उपयोग इन आंदोलनों को कुचलने के लिए कर रहा है।[7] पॉस्को विरोधी आंदोलन के विषय में ख़ास बात यह है कि इस आंदोलन में यहाँ की स्थानीय स्त्रियाँ बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इस शोध-पत्र के पीछे मेरा उद्देश्य भी विकास और विस्थापन के पूरे ताने-बाने के भीतर स्त्रियों, ख़ासकर ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों, की स्थिति को ही सामने लाना है। तथ्य बताते हैं कि भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन क़ानून, आदिवासियों तथा वनवासियों के अधिकारों को क़ानूनी जामा पहनाने वाला— अनुसूचित जनजाति तथा अन्य परम्परागत वनवासी अधिनियम (वन्य अधिकार अधिनियम), 2006 की माँग को ले कर चले लम्बे आंदोलन में भी स्त्रियों ने निर्णायक योगदान दिया था। केवल यही नहीं, 1970-80 के दशक में वर्तमान उत्तराखण्ड के चमोली ज़िले में हुए चिपको आंदोलन में गौरा देवी समेत बहुत-सी स्त्रियों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[8] नर्मदा बचाओ आंदोलन,[9] टिहरी बाँध परियोजना विरोधी आंदोलन,[10] महेश्वर बाँध विरोधी आंदोलन[11] पिछले साल मध्य प्रदेश में हुए जल सत्याग्रह,[12] पॉस्को परियोजना विरोधी आंदोलन[13] में भी स्त्रियों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

इस रोशनी में यह जानना ज़रूरी है कि इन आंदोलनों अथवा विस्थापन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का क्या कोई जेण्डर-आयाम भी है? भारतीय समाज में सदा सर्वदा लैंगिक भेदभाव का शिकार रही स्त्रियाँ विस्थापन को कैसे महसूस करती हैं? क्या विस्थापन को लेकर स्त्रियों के अनुभव पुरुषों से भिन्न है? विस्थापितों को न्याय दिलाने के उद्देश्य से निर्मित 'पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन' (आर ऐंड आर) नीतियों में उनके लिए कितनी जगह है? इन्हीं सवालों के हल ढूँढ़ने के लिए लिखा गया यह शोध-पत्र कुल पाँच भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में विकास की वर्तमान प्रक्रिया पर कुछ बुनियादी सवाल उठाए गये हैं। इसमें विकास और विस्थापन की पूरी प्रक्रिया को स्त्री-दृष्टि से जाँचने का प्रयास किया गया है।

दूसरे भाग में यह जानने की कोशिश की गयी है कि विस्थापन स्त्रियों को किस प्रकार प्रभावित करता है। और, क्या एक पितृसत्तात्मक समाज में विस्थापन को लेकर स्त्री-पुरुष के अनुभवों में भिन्नता होती हैं? तीसरे भाग में विस्थापितों के पुनर्वास और विस्थापन के लिए बनाई गयी नीतियों और क़ानूनों का स्त्री-केंद्रित मूल्यांकन पेश किया गया है। इसमें यह भी बताने का प्रयास है कि

---

[7] हरिमोहन माथुर (2009).

[8] विस्तार के लिए देखें, www.merapahed.com.

[9] बी. मोर्स और टी. बर्जर (1992).

[10] सी. पालित और पी. मोदी (1992).

[11] चित्ररूपा पालित (2009) : 282-295.

[12] 2012 में महाराष्ट्र के खण्डवा ज़िले में स्थानीय लोगों द्वारा ओंकारेश्वर बाँध के कारण अधिग्रहित की गयी अपनी ज़मीन के बदले मुआवज़े और पुनर्वास की माँग को लेकर जल सत्याग्रह किया. इस जल सत्याग्रह में स्त्रियों ने भी अग्रणी भूमिका निभायी. उन्होंने कई दिनों तक कमर तक पानी में खड़े रहकर मध्य प्रदेश सरकार से मुआवज़े और पुनर्वास की माँग की. बहरहाल माँग पूरी न होने के कारण अप्रैल, 2015 में यह आंदोलन पुन: शुरू कर दिया गया है.

[13] मिनती दास (2013).

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 225

विकास संबंधी नीति-निर्माता स्त्री-हितों की रक्षा और सुरक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाते हैं। चौथे भाग में विस्थापन विरोधी आंदोलनों में स्त्रियों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। इसमें ओडिशा की पॉस्को परियोजना के विरोध में चल रहे आंदोलन को एक केस-स्टडी के रूप में पेश किया गया है। अंतिम भाग में कुछ बुनियादी समस्याओं को सामने रखते हुए मेरी ओर से कुछ सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

I

विकास, विस्थापन और स्त्रियाँ

विकास एक अत्यंत जटिल अवधारणा है। अलग-अलग संदर्भों में इसकी परिभाषा भी बदलती रहती है। अनेक बार स्वयं संदर्भ ही विकास की न्यायसंगत परिभाषा रचते हैं। हमारे यहाँ विकास की संकल्पना हमेशा से ही गहरे वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ लोग विकास को सुनियोजित परियोजनाओं के माध्यम से आँकते हैं, तो कुछ इसे सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। कुछ इसे व्यक्ति को प्राप्त विकल्पों[14] की विविधता के रूप में देखते हैं, तो कुछ लोगों के लिए विकास का अर्थ है अवसरों की समानता। कुछ लोगों के लिए जहाँ विकास का अर्थ लैंगिक समानता है तो किसी के लिए विकास का अर्थ है वितरणमूलक न्याय।[15] काव्यात्मक भाषा में कहा जा सकता है कि विकास वह 'चाँद' है जिस पर हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से कविता लिखता है।

अमर्त्य सेन 'विकास' को एक तरफ़ जहाँ सक्षमता-वृद्धि (केपेबिलिटी एक्सपेंशन)[16] के रूप में देखते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ उनके लिए विकास 'स्वतंत्रता'[17] भी है। विकास को 'व्यक्ति की कार्यक्षमता में बढ़ोतरी' के रूप में देखते हुए सेन तर्क देते हैं कि यदि राज्य व्यक्ति को उसकी कार्य करने की क्षमता में बढ़ोतरी करने में सहायता दे तो व्यक्ति स्वत: अपना विकास करने में सक्षम हो सकता है। कार्यक्षमता विकसित होने के बाद एक तरफ़ जहाँ व्यक्ति अपने आर्थिक क्रियाकलापों द्वारा राज्य की संवृद्धि में योगदान दे सकेगा, वहीं दूसरी तरफ़ राज्य को व्यक्ति के विकास के लिए अलग से कुछ करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। विकास को स्वतंत्रता से जोड़ते हुए सेन का मानना है कि (1) राजनीतिक स्वतंत्रता और नागरिक अधिकार, (2) सामाजिक अवसर तथा बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराना, (3) आर्थिक स्वतंत्रता, (4) पारदर्शिता की गारंटी, (5) सुरक्षात्मक अधिकार, जिसमें बेरोज़गारी भत्ता, स्त्रियों को विशेष सुविधाएँ आपातकाल के दौरान सहायता आदि कुछ ऐसे संकेतक हैं जिनकी व्यवस्था करके राज्य द्वारा व्यक्ति के विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।[18] अमर्त्य सेन आर्थिक विकास के साथ-साथ मानव विकास सूचकांकों पर सफलता, जिसमें— शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, लैंगिक समानता आदि शामिल हैं— को विकास का महत्त्वपूर्ण पैमाना मानते हैं।[19] सेन आर्थिक विकास को सामाजिक कल्याण की जवाबदेही से जोड़ते हैं। सेन के तर्कों से इतर जगदीश भगवती का मानना है कि आर्थिक संवृद्धि ही सामाजिक प्रगति और कल्याण की अग्रदूत

---

[14] 'सोशल ट्रांसफरमेशन' से यहाँ आशय समाज में आ रहे सकारात्मक बदलावों से है.

[15] 'वितरणमूलक न्याय' से यहाँ आशय रॉल्स द्वारा सुझाए गये— डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिस से है. इसके अंतर्गत आदर्श माना गया है कि संसाधनों का वितरण तथा पुनर्वितरण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि समाज के सबसे दीन-हीन व्यक्ति की स्थिति में सुधार आ सके.

[16] अमर्त्य सेन (2009) :12.

[17] अमर्त्य सेन (1999).

[18] वही.

[19] अमर्त्य सेन (2013) : 15.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 226

होती है। भगवती के अनुसार राज्य को सामाजिक तथा मानव विकास पर अलग से फ़ोकस करने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि आर्थिक संवृद्धि आने से सामाजिक कल्याण और मानव विकास स्वत: हो जाता है।[20]

इन दोनों धारणाओं से साफ़ है कि विकास को ले कर आर्थिक विकास बनाम मानव विकास का विवाद खड़ा हो जाता है। विकास संबंधी सिद्धांतों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि विकास का एक वास्तविक और आदर्श लक्ष्य/माध्यम 'वितरण के साथ संवृद्धि' है। इस सिद्धांत की जड़ें जॉन रॉल्स द्वारा प्रतिपादित 'वितरणमूलक न्याय-सिद्धांत' में देखी जा सकती है। रॉल्स का मानना है कि संसाधनों (यहाँ इसका आशय आर्थिक वृद्धि से प्राप्त लाभों से है) का समाज के सभी वर्गों के बीच वितरण तथा पुनर्वितरण होना चाहिए।[21] भारत में इस सिद्धांत को न्यायपूर्ण माना गया है, क्योंकि इस सिद्धांत के अंतर्गत एक ऐसी परिकल्पना पेश की गयी है जिसमें राज्य को प्राप्त लाभों का वितरण तथा पुनर्वितरण इस प्रकार करने की योजना है जिससे समाज के सबसे दीन-हीन तथा वंचित व्यक्ति का भी कल्याण हो सके। ऐसे में एक लोकतांत्रिक राज्य की लोकतांत्रिक सरकार का कर्तव्य है कि वह विकास संबंधी योजनाओं परियोजनाओं की व्यवस्था करते समय यह सुनिश्चित करे कि इससे जनित लाभों में समाज के सभी वर्गों-समुदायों की हिस्सेदारी होगी। लाभों का वितरण समानता के आधार पर हो ताकि वर्ण, जाति, लिंग, धर्म आदि के आधार पर किसी के साथ अन्याय न हो।

> अमर्त्य सेन 'विकास' को एक तरफ़ जहाँ सक्षमता-वृद्धि के रूप में देखते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ उनके लिए विकास 'स्वतंत्रता' भी है। विकास को 'व्यक्ति की कार्यक्षमता में बढ़ोतरी' के रूप में देखते हुए सेन तर्क देते हैं कि यदि राज्य व्यक्ति को उसकी कार्य करने की क्षमता में बढ़ोतरी करने की सहायता दे तो व्यक्ति स्वत: अपना विकास करने में सक्षम हो सकता है।

दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ आज़ादी के इतने साल बाद भी ऐसा नहीं हो पाया है। समय के साथ-साथ 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' कहीं खो सी गयी और उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और निजीकरण की शुरुआत होते ही भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ बुनियादी परिवर्तन आये। अब आर्थिक संवृद्धि को ही विकास के 'वास्तविक' मानक के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। बुनियादी ढाँचे के विकास और बड़ी परियोजनाओं की स्थापना के लिए भूमि की माँग में अभूतपूर्व इज़ाफ़ा हुआ। बड़ी संख्या में विशेष आर्थिक क्षेत्रों (सेज़) की संख्या की बढ़ोतरी से भी ज़्यादा से ज़्यादा भूमि की ज़रूरत पैदा हुई। इसकी पूर्ति के लिए एक तरफ़ जहाँ जंगलों का सफ़ाया कर उसमें रहने वाले आदिवासियों-वनवासियों को विस्थापित किया गया वहीं दूसरी ओर किसानों की ज़मीनों का जबरन अधिग्रहण कर भूमि को उद्योगों को सौंपा गया। परिणामस्वरूप आज विस्थापन की समस्या अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गयी है। विस्थापन की लगातार विकराल होती समस्या को आज बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा 'फेलियर ऑफ़ डिवेलपमेंट' यानी विकास की विफलता के रूप में देखा जा रहा है।[22] इसके पीछे का तर्क यह है कि अब तक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया एक ख़ास तबक़े के लिए ही फ़ायदेमंद सिद्ध हुई है।

---

[20] पी.एन. भगवती (2013).

[21] जॉन रॉल्स (1971).

[22] वॉल्टर फर्नांडीज़ और इनाक्षी गांगुली ठुकराल (1989) (सम्पा.).

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 227

सत्यजीत सिंह अपनी पुस्तक 'दि डैम ऐंड दि नेशंस : डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट इन नर्मदा वैली' में इन विस्थापितों को 'विक्टिम्स ऑफ़ डिवेलपमेंट' की संज्ञा देते है। सिंह के अनुसार बाध्यकारी विस्थापन की स्थिति में विस्थापितों को 'राइट टू कम्पेंसेशन' प्राप्त होना चाहिए। सिंह विस्थापितों को भूमि के बदले दिये जाने वाले नक़द मुआवज़े को पूरी तरह अपर्याप्त बताते हैं। उनका मत है कि पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन पैकेज के तहत दिये जाने वाला मुआवज़े का निर्धारण इस प्रकार होना चाहिए जिससे विस्थापितों का जीवन स्तर उनके विस्थापन-पूर्व जीवन-स्तर से बेहतर हो सके।[23] साथ ही सिंह का मत है कि विस्थापितों को आवास के साथ-साथ यदि भूमि के बदले उपजाऊ भूमि मुआवज़े स्वरूप दी जाए तो उनके जीवन के पुन: पटरी पर आने की सम्भावना अपेक्षाकृत ज़्यादा हो जाती है।

नारीवादी आलोचना

नारीवादियों का मत है कि भारत जैसे समाजों में विकास के सिद्धांत अधीनस्थता की स्थिति में रह रही स्त्रियों की दशा सुधारने में नाकाम रहे हैं।[24] विकास संबंधी नीति-निर्माण में स्त्रियाँ सदैव ही एक अदृश्य इकाई रही हैं।[25] पूर्णत: अदृश्य तथा उपेक्षित न भी कहें, तो कम से कम इस बात से तो इनकार नहीं किया जा सकता कि वैकासिक नीतियों में उन्हें पुरुषों के बराबर दर्जा कभी नहीं दिया गया।[26] इसी आधार पर नाइला कबीर की मान्यता है कि हमारे यहाँ विकास के सम्पूर्ण विचार पर ही जेण्डर-वर्चस्व क़ायम है। नाइला का तर्क है कि राज्य स्त्री को एक स्वतंत्र-कर्ता अथवा इकाई न मान कर उसे केवल पुरुष की अनुगामिनी के रूप में देखता है।[27] राज्य पूरी तरह से इस धारणा से ग्रस्त है कि पुरुषों को पहुँचाए जाने वाले लाभ उनके परिवारों की स्त्रियों तक स्वत: बूँद-बूँद रिस कर पहुँच जाते हैं।[28]

राज्य, जिसका दायित्व है कि वह विकास की प्रक्रिया में स्त्री व पुरुष दोनों की समान भागीदारी की व्यवस्था करे, स्वयं लैंगिक अंधता का शिकार हो जाता है। ऐसे में राज्य विकास की प्रक्रिया तथा इससे प्राप्त लाभों पर स्त्रियों की हिस्सेदारी को उनके अधिकार के रूप में मान्यता नहीं देता। वह केवल स्त्रियों का 'कल्याण' करना ही अपना नैतिक दायित्व समझता है।

हमारे समाज में प्रारम्भ से ही लैंगिक आधार पर स्त्री व पुरुष के बीच कार्यों का विभाजन किया जाता रहा है। इसके तहत स्त्रियों द्वारा किये गये कार्यों को घरेलू, अनुत्पादक और गौण महत्त्व का माना गया है। इसी पुरानी सांस्कृतिक विरासत के चलते विकास की प्रक्रिया में पुरुषों ने जहाँ परिवारों के मुखिया तथा उत्पादक अभिकर्ता (एजेंट) के रूप में प्रवेश किया, वहीं स्त्रियों की भूमिका केवल माँ और पत्नी बने रहने तक सीमित रही। परिणामस्वरूप मुख्यधारा के वैकासिक प्रयास केवल पुरुषों

---

[23] सत्यजीत सिंह, ज्याँ ड्रेज़ और मीरा सैमसन (1997).

[24] ख़ासकर स्त्रियों की आर्थिक क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए उन्हें विशेष ट्रेनिंग प्रदान की जा सकती है. इसके अतिरिक्त आर ऐंड आर पैकेज के तहत दी जाने वाली नौकरियों में कुछ नौकरियाँ स्त्रियों के लिए आरक्षित की जा सकती हैं. एक बुनियादी सुधार यह किया जा सकता है कि 'प्रभावित परिवार' को दिया जाने वाला नक़द मुआवज़ा परिवार के स्त्री-पुरुष दोनों के संयुक्त बैंक खाते में डाला जाए ताकि स्त्रियों को भी उस राशि पर अधिकार मिल सके. सबसे आधारभूत परिवर्तन यह किया जा सकता है कि पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन स्कीमों के निर्माण के दौरान— नीतिगत स्तर पर, नियोजन स्तर पर तथा उनके क्रियान्वयन स्तर— पर स्त्रियों को शामिल किया जा सकता है. इसमें स्त्रियों के लिए कार्यरत ग़ैर-सरकारी संगठनों की भी सहायता ली जा सकती है. स्त्री सदस्यों को यह कार्य दिया जा सकता है कि वह विस्थापित एवं सम्भावित विस्थापित स्त्रियों से बातचीत करें और उनकी ज़रूरतों को पहचानें ताकि उन्हें पुनर्वास योजनाओं के माध्यम से पूरा किया जाए.

[25] नाइला कबीर (1994).

[26] वही.

[27] वही.

[28] लाइला मेहता (2009)(सम्पा.), : 3-34.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 228

पर ही फोकस करके किये गये, और स्त्रियों को सदा-सर्वदा हाशियाकृत 'कल्याण सेक्टर' की तरफ़ धकेल दिया गया।[29]

नारीवादियों के मुताबिक़ विकास के पूरे विचार पर ही जेण्डर-वर्चस्व क़ायम है। इसी कारण विकास के लाभ केवल पुरुषों तक ही पहुँच पाते हैं। लोक-प्रशासन में नीति-निर्माण प्रक्रिया पर पुरुष आधिपत्य का वर्णन करते हुए कैमिला स्टाइवर्स बताती हैं, 'समानता और तटस्थता के अनेक दावों के बावजूद लोक-प्रशासन भी पूर्णत: पुरुष केंद्रित है। जबकि वास्तविकता यह है कि लोक-प्रशासन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों में पुरुष इसलिए हिस्सेदारी कर पाते हैं क्योंकि स्त्रियाँ घरेलू कार्य करती हैं। इससे एक तरफ़ जहाँ स्त्रियाँ सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी करने के लिए समय नहीं निकाल पातीं, वहीं दूसरी तरफ़ पुरुष प्रधान समाज उनके कार्यों को पूर्णत: महत्त्वहीन साबित करने की कोशिश करता रहता है।'[30]

विकास की पूरी प्रक्रिया के संदर्भ में बात करते हुए नाइला कबीर ने 'वुमॅन इन डिवेलपमेंट एप्रोच' का इस्तेमाल किया है।[31] इसका उदय सत्तर के दशक में हुआ। संयुक्त राष्ट्र ने विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों को महत्त्व देते हुए उन्हें 'विकास के अभिकर्ता' के रूप में मान्यता दी और सत्तर के दशक को विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्त्रियों के समावेशन का दशक घोषित किया। विकास के लाभों से स्त्रियों के वंचित रह जाने का एक अन्य कारण है नीति-निर्माताओं द्वारा स्त्रियों को नज़रअंदाज़ करना। इस कारण वे विकास की प्रक्रिया से जुड़ ही नहीं पातीं। भास्वती दास के शब्दों में, 'विकास प्रक्रिया में स्त्रियों के समावेशन के संबंध में सबसे बड़ी समस्या यह है कि नीति-निर्माताओं को स्त्रियाँ दिखाई ही नहीं देतीं।'[32] इसी कारण अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसियों के भीतर सत्तर के आस-पास पहली बार औपचारिक नारीवाद की पहली लहर देखी गयी जिसका उद्देश्य विकास संबंधी शोध और नीति में स्त्रियों को एक 'दृश्य वर्ग' के रूप में शामिल करवाना था। इसका परिणाम ही 'वुमॅन इन डिवेलपमेंट एप्रोच' के रूप में निकला। दरअसल, विकास के विचार पर लैंगिक प्रभुत्व को विस्थापित स्त्रियों के संदर्भ में और अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है।

> रॉल्स का मानना है कि संसाधनों (यहाँ इसका आशय आर्थिक वृद्धि से प्राप्त लाभों से है) का समाज के सभी वर्गों के बीच वितरण तथा पुनर्वितरण होना चाहिए। भारत में इस सिद्धांत को न्यायपूर्ण माना गया है, क्योंकि इस सिद्धांत के अंतर्गत एक ऐसी परिकल्पना पेश की गयी है जिसमें राज्य को प्राप्त लाभों का वितरण तथा पुनर्वितरण इस प्रकार करने की योजना है जिससे समाज के सबसे दीन-हीन तथा वंचित व्यक्ति का भी कल्याण हो सके।

केवल विकास ही नहीं, विस्थापन से जुड़ी पुनर्वास प्रक्रिया में भी स्त्रियों को सदैव 'अदृश्य' ही माना गया। वाल्टर फर्नांडीज़ ने इसे 'मिसिंग वुमॅन' की संज्ञा दी है। परशुरामन के अनुसार स्त्रियों को पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन संबंधी नीतियों के नियोजन तथा क्रियान्वयन की प्रक्रिया में कभी शामिल नहीं किया गया। न तो नीति निर्माण प्रक्रिया में उन्हें शामिल किया गया और न ही स्त्रियों की विशिष्ट ज़रूरतों को ही कभी पहचान मिल पायी। विस्थापितों के पुनर्वास और पुनर्संस्थापन लिए गठित राज्य,

---

[29] नाइला कबीर (1994) : 5.

[30] कैमिला स्टाइवर्स (1993) : 5

[31] नाइला कबीर (1994) : 2.

[32] भास्वती दास तथा विमल खाबास (2009) : 2.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 229

ज़िला अथवा तहसील किसी भी स्तर की समितियों में स्त्री-अधिकारियों को शामिल करने की ज़रूरत नहीं समझी गयी। इससे स्पष्ट है कि समाज, सरकार और नीति-निर्माताओं का पितृसत्तात्मक सोच किस प्रकार स्त्री-हितों को प्रत्येक स्तर पर प्रभावित करता है। सामंती परम्पराओं का पोषण और सरकार द्वारा राजनीतिक जोखिम न उठाए जाने की प्रवृत्ति इस सोच को और मजबूत करती है। नतीजतन महिलाओं के हित और अधिकार और सीमित होते चले जाते हैं।

II

विस्थापन और स्त्रियाँ

स्त्री-दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर यह तथ्य उभर कर आता है कि विस्थापन स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अलग तरह से प्रभावित करता है। इसके अनेक कारण हैं। इनमें सबसे प्रमुख है स्त्रियों का ज़मीन, प्राकृतिक संसाधनों तथा अपने परिवेश के साथ घनिष्ठ संबंध होना, जो न केवल उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का निर्धारण करता है बल्कि उनके दैनिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विस्थापन और इसके प्रभावों पर बुद्धिजीवियों द्वारा अनेक अध्ययन हुए हैं। परंतु विस्थापन का स्त्री-केंद्रित अध्ययन एक उपेक्षित क्षेत्र ही है। भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता और उचित मुआवज़ा क़ानून, 2013 की रचना के समय होने वाली चर्चाओं में भी विस्थापित स्त्रियों की मुश्किलें किसी की जुबान पर नहीं थीं। बहरहाल, विस्थापन का स्त्री-दृष्टि से मूल्यांकन करने पर मुख्य रूप से दो प्रश्न सामने आते हैं : क्या विस्थापन को स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अलग ढंग से महसूस करती हैं? और, नीतिगत स्तर पर विस्थापित स्त्रियों के पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन की क्या व्यवस्था की गयी और वह कितनी न्यायपूर्ण है?

पहले प्रश्न का जवाब चित्ररूपा पालित अपने शोधकार्य में देती हैं। पालित का शोध सरदार सरोवर बाँध परियोजना के कारण विस्थापित हुई स्त्रियों पर केंद्रित है।[33] चित्ररूपा के ही शब्दों में, 'कुछ हद तक स्त्री और पुरुष दोनों के ही विस्थापन संबंधी अनुभव समान होते हैं, परंतु उसके बावजूद दोनों के अनुभवों में गहरी असमानता होती है। विस्थापन स्त्रियों पर पुरुषों की तुलना में ज़्यादा विध्वंसकारी प्रभाव छोड़ता है जिन्हें वे ताउम्र झेलती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में स्त्री और पुरुषों की भूमिका और अधिकार काफ़ी अलग-अलग होते हैं। विस्थापन के बाद पुरुष को तो अपने आर्थिक अधिकार दूसरी जगह मिल जाते हैं, परंतु स्त्रियाँ उन्हें पूरी तरह से खो देती हैं।' ऐसे में पुनर्वास नीतियों का स्त्रियों के प्रति सौतेला रवैया उन्हें दोहरी मात देता है।[34] माइकल सर्निया ने विस्थापितों पर केंद्रित 'इम्पॉवरमेंट रिस्क ऐंड रिकंस्ट्रक्शन मॉडल' (आईआरआर) पेश किया है। इस मॉडल में उन्होंने विस्थापन से उत्पन्न होने वाले कुल आठ ख़तरों की पहचान की है।[35] उनके अनुसार विस्थापन भूमिहीनता, आवासहीनता, बेरोज़गारी, बीमारी और मृत्यु दर में बढ़ोतरी, 'कॉमन प्रोपर्टी रिर्सोसेज़'[36] का अभाव तथा सामाजिक अलगाव जैसे गम्भीर संकट पैदा करता है। ये सभी संकट पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ज़्यादा ख़तरनाक तरीक़े से प्रभावित करते हैं। सर्निया के अनुसार पुनर्वास और पुनर्संस्थापन संबंधी नीति-निर्माता यदि इन संकटों को ध्यान में रखते हुए पुनर्वास पैकेज का निर्धारण करें तो इन संकटों से बचा जा सकता है।

---

[33] चित्ररूपा पलित (2009) : 284.

[34] वही : 249-270.

[35] वही : 284-287.

[36] माइकल सर्निया (1997), : 1569-87.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 230

कुछ हद तक स्त्री और पुरुष दोनों के ही विस्थापन संबंधी अनुभव समान होते हैं, परंतु उसके बावजूद दोनों के अनुभवों में गहरी असमानता होती है। विस्थापन स्त्रियों पर पुरुषों की तुलना में ज़्यादा विध्वंसकारी प्रभाव छोड़ता है जिन्हें वे ताउम्र झेलती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में स्त्री और पुरुषों की भूमिका और अधिकार काफ़ी अलग-अलग होते हैं। विस्थापन के बाद पुरुष को तो अपने आर्थिक अधिकार दूसरी जगह मिल जाते हैं, परंतु स्त्रियाँ उन्हें पूरी तरह से खो देती हैं।

राधाबेन नाम की एक स्त्री जो सरदार सरोवर बाँध परियोजना के कारण गुजरात के 'गधार' ज़िले से विस्थापित और 'मालू' (गुजरात) में पुनर्वसित थीं, ने अपने साक्षात्कार में बताया :

> सरकार ने स्त्रियों के लिए कुछ नहीं किया। हमें जो नक़द मुआवज़ा मिला था वह मेरे पति के नाम था जिसे उन्होंने मनमाने ढंग से ख़र्च कर दिया। गधार में मैं जंगल से पत्ते, गोंद और जड़ी-बूटियाँ लाकर बाज़ार में बेचती थी। रस्सी टोकरी बना कर बेचती थी। इससे में 5000-8000 सालाना कमा लेती थी। लेकिन मालू में आने के बाद मैं पूरी तरह से अपने पति पर निर्भर हूँ। वन से मिली लकड़ियों और फलों के अभाव में मैं निश्चिंत हो कर खाना भी नहीं बना सकती। पोषक तत्वों के अभाव में हमारे बच्चे मर रहे हैं।[37]

इसके अलावा विस्थापन से प्रभावित पुरुष जहाँ विस्थापन को मुख्यत: सम्पत्ति के न्यायपूर्ण अथवा अन्यायपूर्ण विनिमय के रूप में देखते हैं, वहीं स्त्रियाँ विस्थापन की पूरी प्रक्रिया को अपने अधिकारों के छिनने तथा दरिद्रीकरण की प्रक्रिया के रूप में देखती हैं।[38] विस्थापन के बाद विस्थापितों को मिलने वाले पुनर्वास और पुनर्संस्थापन पैकेज में कई बार पुरुषों के लिए नौकरियों की व्यवस्था होती है। परंतु स्त्रियों की निजी आमदनी के प्रमुख साधन यानी स्त्रियों की प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त आजीविका को विस्थापन पूरी तरह नष्ट कर देता है। इसके कारण उनकी परिवार को भोजन और आर्थिक सुरक्षा देने वाली भूमिका प्रभावित होती है।

विस्थापन स्त्रियों को किस तरह प्रभावित करता है इसे जानने के लिए निम्न बिंदुओं पर ग़ौर करना बहुत ज़रूरी है—

---

[37] 'कॉमन प्रोपर्टी रिर्सोसेज़' से यहाँ आशय प्राकृतिक संसाधनों और उनसे प्राप्त उत्पादों से है. प्राकृतिक संसाधनों जैसे वन, मैदान, नदियों, आदि से प्राप्त लकड़ी, गोंद, जड़ी-बूटी, फूल, मछलियाँ आदि आदिवासी समाजों की आजीविका में अहम भूमिका निभाते हैं. वे इन उत्पादों को न केवल अपनी घरेलू ज़रूरतों में इस्तेमाल करते हैं बल्कि बाज़ार में इन्हें बेचकर अपनी आजीविका भी कमाते है. ख़ासकर स्त्रियों की आजीविका मुख्य रूप से इन्हीं उत्पादों पर निर्भर होती है.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 231

1. आर्थिक प्रभाव

ग्रामीण आदिवासी स्त्रियाँ जंगलों, मैदानों, नदियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों से स्वच्छ जल, मछलियाँ, लकड़ियाँ, गोंद, जड़ी-बूटी जैसी चीज़ें इकट्ठा करती है। इन उत्पादों को न केवल वे अपने घरेलू इस्तेमाल में लाती हैं, बल्कि इन्हें बेच कर आजीविका कमाती है।[39] यह आजीविका उन्हें आर्थिक स्व-निर्भरता प्रदान करती है। अपनी आर्थिक भूमिका तथा महत्त्व के कारण परिवारिक स्तर पर होने वाली निर्णय-प्रक्रिया में भी उनकी राय महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।[40] विस्थापन के बाद प्राकृतिक संसाधनों के छिन जाने के कारण वे केवल अपने पति की आश्रिता बन कर रह जाती हैं। ओडिशा के अपरकोलाब हाइड्रो प्रोजेक्ट के कारण विस्थापित होने वाली स्त्रियों की भी यही दशा देखने को मिली।[41] विस्थापन के बाद इन स्त्रियों को न केवल दिहाड़ी मज़दूरी करने के लिए जद्दोजहद करनी पड़ी बल्कि ये दूसरों के घर घरेलू नौकरानी बनने तक को विवश हो गयीं।

2. सामाजिक प्रभाव

ग्रामीण तथा आदिवासी स्त्रियों का अपने परिवेश तथा पड़ोसियों से काफ़ी क़रीबी रिश्ता होता है। इन समाजों में विवाह भी एक निश्चित घेरे और दूरी के भीतर ही होता है। इसलिए स्त्रियाँ अपने पैतृक घर आसानी से पैदल भी आ जा सकती हैं। पैतृक घर से नज़दीकी और पड़ोसियों से संबंध इन स्त्रियों को एक ख़ास तरह का सामाजिक नेटवर्क[42] प्रदान करते हैं। यह सामाजिक नेटवर्क इन स्त्रियों को ज़रूरत के समय सहायता प्रदान करता है। जैसे सूचनाएँ देना, आर्थिक सहायता, बच्चे के पालन-पोषण में सहायता, बीमारी गर्भावस्था में सहायता आदि। परंतु विस्थापन स्त्रियों से उनका यह सामाजिक नेटवर्क पूरी तरह से छीन लेता है।

इसके साथ ही अधिकांश पुनर्वास स्थलों का अध्ययन करने पर यह भी पाया गया है कि पुनर्वास स्थल पर पहले से रह रहे स्थानीय लोग विस्थापित होकर आये ग्रामीणों व आदिवासियों को शंकालु[43] दृष्टि से देखते हैं।[44] इसी कारण कई बार पुनर्वास स्थल में नये व पुराने लोगों के बीच तनाव और लड़ाई-झगड़े की घटनाएँ देखने को मिलती हैं। ऐसे में पूरा दिन घर में ही रहने वाली स्त्रियाँ स्थानीय लोगों के बीच काफ़ी असुरक्षित महसूस करती हैं। साथ ही उनके अपने ही पति तनाव के मद्देनज़र उन्हें घर से बाहर नहीं जाने देते। दोनों ही कारणों से स्त्रियाँ नये परिवेश से कोई रिश्ता नहीं बना पातीं और पूरी तरह से अलगाव महसूस करती हैं।[45]

3. घरेलू हिंसा और पुलिसिया दमन

लाइला मेहता बताती हैं कि विस्थापन से पूर्व स्त्रियों को प्राप्त सामाजिक नेटवर्क न केवल उन्हें कुछ ज़रूरी सुविधाएँ प्रादन करता है बल्कि उनके पति और ससुरालवालों पर एक ख़ास तरह का सामाजिक नियंत्रण भी स्थापित करता है! ऐसे में स्त्रियों के ससुरालवालों द्वारा की जाने वाली घरेलू हिंसा तथा दुर्व्यवहार की सम्भावना कम रहती है, जबकि विस्थापन के बाद सामाजिक नियंत्रण रूपी बैरियर के

---

[38] लाइला मेहता (2009) : 5.

[39] वॉल्टर फ़र्नांडीज़ (सम्पा.) (1989).

[40] वही.

[41] हरिमोहन माथुर (2009) : 166-195.

[42] शंकालु से यहाँ तात्पर्य आदिवासी समाज के बारे में अन्य समुदायों की रूढ़िबद्ध सोच से है जिसके अनुसार आदिवासी नराहारी और चोर समुदाय होते हैं.

[43] लाइला मेहता (2009) : 3-36.

[44] वसुधा धागमवर (1989) : 171-184.

[45] चित्ररूपा पलित (2009) तथा हरिमोहन माथुर (2009) : 282-295 तथा 166-195.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 232

पान के खेतों या बेलों की इस भूमि पर बड़ी संख्या में लोग दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करते हैं। पीपुल्स सोलिडेरिटी ग्रुप द्वारा स्थानीय लोगों से लिए गये साक्षात्कारों से पता चलता है कि सभी लोगों को, जब वे काम चाहते हैं, पान के खेतों में काम मिल जाता है। उनकी दैनिक आय काम की प्रकृति पर निर्भर करती है।

अभाव में स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक घरेलू हिंसा और दुर्व्यवहार झेलने को मजबूर होती हैं।[46] विस्थापन के बाद स्त्रियों के प्रति बढ़ती घरेलू हिंसा का एक और कारण है पुरुषों की शराब पीने की आदत में वृद्धि। चित्ररूपा पालित बताती हैं कि विस्थापन से पहले ग्रामीण व आदिवासी पुरुष केवल चावल और महुए द्वारा घर में निर्मित शराब पीते थे, जो अक्सर कुछ ख़ास आयोजनों पर ही बनती थी। लेकिन विस्थापन पश्चात् चावल और महुए की कमी के कारण पुरुषों ने ठेकेदारों द्वारा निर्मित शराब पीनी शुरू की। इससे एक तरफ़ जहाँ पुरुषों ने मुआवज़े के रूप में मिला सारा धन शराब पर ख़र्च कर दिया, वहीं दूसरी तरफ़ शराब पीने के बाद घरेलू झगड़ों तथा स्त्रियों के प्रति होने वाली घरेलू हिंसा में भी बढ़ोतरी हुई।[47] इसके अतिरिक्त विस्थापन के दौरान तथा उसके बाद स्त्रियों को पुलिसिया दमन तथा क्रूरता भी झेलनी पड़ती है। अनेक मामलों में देखा गया कि विस्थापन विरोधी स्त्रियों को न केवल पुलिस की मार झेलनी पड़ी बल्कि उन्हें बलात्कार जैसे नारकीय अनुभवों से भी गुज़रना पड़ा।[48]

4. बुनियादी सुविधाओं का अभाव

पुनर्वास स्थलों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव एक भयंकर समस्या है। राधाबेन का साक्षात्कार भी इस भयानक समस्या की तरफ़ इशारा करता है। सरदार सरोवर बाँध परियोजना के विस्थापितों के पुनर्वास स्थल में जीवन जीने की परिस्थितियाँ काफ़ी कष्टदायक थीं।[49] स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था न होने के कारण लोग दूषित पानी पीने के लिए मजबूर थे। खाद्य पदार्थों के अभाव में बच्चों और स्त्रियों की पोषण संबंधी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही थीं। जल निकासी के लिए नालियों का व्यापक अभाव था। चारे के अभाव के कारण पशुओं की मृत्यु-दर में उछाल आ रहा था। परशुरामन बताते हैं कि 1986-90 के बीच पुनर्वास स्थल में जन्म लेने वाले बच्चों में लगभग 30 प्रतिशत बच्चों

---

[46] पालित (2009).

[47] लाइला मेहता (2009).

[48] एस. परशुरामन (1999) : 211-226.

[49] माइकल सर्निया (1997) : 1569-87.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 233

की मृत्यु हो गयी। अनेक बच्चे पाँच वर्ष के होने से पहले मृत्यु को प्राप्त हो गये। अनेक माताओं ने अपने शिशुओं को गर्भ में ही खो दिया। पुनर्वास स्थल में स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण स्थितियाँ धीरे-धीरे बद से बदतर होती चलीं गयीं।[50] माइकल सर्निया ने भी अपने आईआरआर मॉडल के तहत बताया कि विस्थापन एक तरफ़ जहाँ विस्थापितों के लिए मानसिक आघात, असुरक्षा तथा सामाजिक अलगाव लेकर आता है, वहीं पुनर्वास स्थल में बुनियादी सुविधाओं की कमी उनके दुख को दुगना कर देती है। इनकी सबसे ज़्यादा मार पहले से ही कमज़ोर वृद्धों, स्त्रियों और बच्चों पर पड़ती है।[51]

5. कुछ सकारात्मक प्रभाव

शोधकर्ताओं ने स्त्रियों की दृष्टि से विस्थापन के कुछ सकारात्मक परिणामों की भी चर्चा की है। लेकिन ये परिणाम अलग-अलग स्थितियों में अलग-अलग पाए गये हैं इसलिए इन पर एकमत नहीं हुआ जा सकता। वास्तव में विस्थापन के स्त्रियों पर प्रभाव का निर्धारण बहुत हद तक उनकी विस्थापन पूर्व स्थिति द्वारा भी होता है। अलग-अलग सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि वाली स्त्रियों पर विस्थापन का प्रभाव भी अलग-अलग तरीक़े से पड़ता है।[52] एक तरफ़ जहाँ स्त्रियों पर विस्थापन के विध्वंसकारी प्रभाव सामने आते हैं, वहीं कुछ विशेष परिस्थितियों में विस्थापन स्त्रियों के लिए कुछ सकारात्मक अवसर भी लेकर आता है। उदाहरण के लिए विस्थापन से पहले की स्थिति में ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों को अपने हाथों से आटा पीसना तथा नदियों से पानी भर कर लाना होता था। ऐसे ही अनेक कार्य उनके दैनिक जीवन का हिस्सा थे जिनके द्वारा वह अपनी दैनिक ज़रूरतों की पूर्ति किया करती थीं। विस्थापन के बाद इस स्थिति में बदलाव देखने को मिले। विस्थापन के बाद पुनर्वास स्थल में आटा मिलों की उपलब्धता तथा घरों तक पानी की आपूर्ति के कारण स्त्रियों को इन कष्टकारी कार्यों से निजात मिली। अब वे इन कार्यों में इस्तेमाल होने वाले समय को आराम करने तथा सिलाई-बुनाई जैसी आय-उपार्जन से जुड़ी गतिविधियों में लगाने के लिए स्वतंत्र थीं।[53] दूसरे, विस्थापन के बाद पुनर्वास स्थल में स्त्रियों पर विस्थापन पूर्व क़ायम सामाजिक नियंत्रण में भी कमी आयी। अब वे अपने तरीक़े से जीवन जीने के लिए स्वतंत्र थीं।

लाइला मेहता तादवी और वसावा जनजातियों का विवरण देते हुए बताती हैं कि विस्थापन से पहले के गाँव गधार में एक तादवी स्त्री का एक वसावा पुरुष के साथ रहना बिल्कुल सम्भव नहीं था। ऐसा करने पर उन्हें भारी सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ता। लेकिन विस्थापन के बाद नये पुनर्वास स्थल में ऐसा होना अपेक्षाकृत आसान हो गया। कुछ परिस्थितियों में यह भी देखा गया कि विस्थापन के कारण हुए सामाजिक बदलाव ने सामाजिक संबंधों को बुनियादी रूप से बदल दिया जिसने आगे चलकर लैंगिक मान्यताओं और बाधाओं को चुनौती दी। परिणामस्वरूप स्त्री सशक्तीकरण का भी मार्ग प्रशस्त हुआ।[54] हरिमोहन माथुर के अनुसार, 'पुनर्वास स्थल में स्कूल जैसी सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता के फलस्वरूप लड़कियों को शिक्षा से जुड़ने का मौक़ा मिला। कुछ परियोजनाओं के तहत स्त्रियों को 'स्वयं-सहायता समूह' के तहत संगठित किया गया ताकि वह अपनी आजीविका

---

[50] 'एमिनेंट डोमेन' के सिद्धांत के अनुसार सम्प्रभु सरकार को यह अधिकार है कि वह जब चाहे 'सार्वजनिक हित' के लिए किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती है. यह सिद्धांत मूल रूप से ह्यूगो ग्रेटिस द्वारा 1625 में प्रतिपादित किया गया था जिसका शाब्दिक अर्थ है— राज्य को सभी संसाधनों पर राज्य को सुप्रीम लॉर्डशिप हासिल है.

[51] उषा रमानाथन (2011) : 10-14.

[52] एस. परशुरामन (1999) : 8.

[53] लाइला मेहता (2009) : 25.

[54] लाइला मेहता (200( ) : 8.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 234

पुनर्जीवित कर सकें।'[55] इन सभी का विश्लेषण करने पर यह बात सामने आती है कि विस्थापन ने एक तरफ़ स्त्रियों को आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक वंचन की तरफ़ धकेल दिया, वहीं दूसरी तरफ़ अत्यधिक सीमित ही सही, लेकिन विकास के कुछ नये सकारात्मक अवसर भी उपलब्ध कराए। नयी जगह में पुरानी रूढ़ियाँ-जड़ताओं से मुक्ति ने उन्हें एक नयी दिशा दिखायी। लेकिन आनुपातिक दृष्टि से देखें तो विस्थापन के कारण पहुँचे सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक आघात की तुलना में ये प्रभाव तात्कालिक राहत देने वाले नहीं कहे जा सकते।

इन प्रभावों के अतिरिक्त एक अन्य कारक विस्थापित स्त्रियों को पूरी तरह तोड़ कर रख देता है। वह है पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन नीतियों का पुरुष-केंद्रित रवैया। त्रासदी यह है कि विस्थापन के कारण स्त्रियों को पहुँची आर्थिक सामाजिक क्षति के निर्धारण की कोई व्यवस्था नहीं है। और न ही विस्थापन के बाद स्त्रियों की विशिष्ट ज़रूरतों का ही कोई ख़याल किया जाता है। इस तरह एक तरफ़ विस्थापन आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तीनों ही स्तरों पर स्त्रियों को दयनीय स्थिति में पहुँचा देता है, जिसके कारण वे विकास की पूरी प्रक्रिया से ही बाहर हो जाती हैं। दूसरी तरफ़ रही-सही कसर विस्थापितों के लिए निर्मित पुनर्वास और पुनर्संस्थापन संबंधी नीतियों में लैंगिक भेदभाव से पूरी हो जाती है। पुनर्वास और पुनर्संस्थापन संबंधी नीतियाँ केवल पुरुष को ही मुआवज़े के लाभार्थी के रूप में स्वीकार करती है, जबकि परिवार की स्त्रियों को पुरुषों पर निर्भर मानकर उनके हितों के प्रति कोई संवेदनशीलता नहीं रखी जाती। लाइला मेहता एक मलेशियाई रिपोर्ट का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, जिसमें लिखा है 'सभी लाभार्थी, उनके बच्चे और उनकी पत्नियाँ'।[56]

ज़्यादातर पुनर्वास और पुनर्संस्थापन नीतियों में मुआवज़े की प्राप्ति के लिए ज़मीन के औपचारिक मालिकाना हक़ को अतिआवश्यक माना गया है। यह विस्थापित स्त्रियों के लिए मुआवज़े की प्राप्ति में एक बड़ी बाधा है। भारतीय समाज में शुरू से ही स्त्रियों को सामाजिक उपेक्षा का शिकार होना पड़ा है। ऐसी पृष्ठभूमि में यह समझना मुश्किल नहीं है कि इस समाज में केवल गिनती की स्त्रियों को ही उनके घर व ज़मीन का मालिकाना हक़ प्राप्त है। ज़मीन के औपचारिक अधिकार प्रमुख रूप से परिवार के पुरुष सदस्य के पास ही रहते हैं। जिसके कारण मुआवज़ा केवल पुरुष को ही मिलता है, जिसे वह अपनी इच्छानुसार ख़र्च करने के लिए स्वतंत्र होता है। इसके अलावा आदिवासी समुदायों में, जहाँ भूमि के औपचारिक हक़ का पूर्णत: अभाव होता है, वहाँ भी पुनर्वास तथा मुआवज़े के वितरण के समय यह औपचारिकता एक बड़ी बाधा बनती है।

आदिवासी क्षेत्रों में स्त्रियों को सम्पत्ति, भूमि तथा जल संबंधी अधिकार परम्परा से प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों का रूप औपचारिक न होने के कारण पुनर्वास और पुनर्संस्थापन संबंधी नीतियों और प्रावधानों में इन्हें पूर्णत: नज़रअंदाज़ किया जाता है। मेहता के शब्दों में, 'ज़्यादातर नीतियाँ और कार्यक्रम सामाजिक संस्था के भीतर स्त्रियों को प्राप्त सम्पत्ति के अनौपचारिक अधिकारों को महत्त्व नहीं देतीं।'[57] ऐसे में हम अनुमान लगा सकते हैं कि पुनर्वास और पुनर्संस्थापन संबंधी नीतियाँ स्त्रियों के प्रति कितनी असंवेदनशील साबित होती हैं।

अनिवार्य विस्थापन की स्थिति में जबकि विस्थापित समुदाय विकास की पूरी प्रक्रिया से ही कट जाते हैं, केवल पुनर्वास और पुनर्संस्थापन नीतियों के माध्यम से ही उन्हें पुन: विकास की मुख्यधारा में शामिल किया जा सकता है। स्त्रियों के संदर्भ में विडम्बना यह है कि विस्थापित होने के बाद पुन: विकास की प्रक्रिया से उन्हें जोड़ने वाला माध्यम अर्थात् पुनर्वास और पुनर्संस्थापन नीतियाँ ही लैंगिक

---

[55] हरिमोहन माथुर (2009): 171.

[56] लाइला मेहता (2009): 10.

[57] वही : 11-12.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 235

भेदभाव का शिकार हो जाती हैं। परिणामस्वरूप स्त्रियाँ तेज़ी से अधिकार-वंचन की अवस्था की ओर बढ़ती जाती हैं।

उपरोक्त बिंदुओं से यह तथ्य सामने आता है कि एक तरफ़ विस्थापन जहाँ स्त्रियों को आर्थिक रूप से कमज़ोर बना देता है, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक स्तर पर भी उनकी स्थिति में गिरावट आती है। वे न सिर्फ़ पुनर्वास स्थल में बुनियादी सुविधाओं के अभाव से जूझती हैं बल्कि नयी जगह में निरंतर असुरक्षा की भावना से भी ग्रस्त रहती हैं। ख़ासकर आदिवासी स्त्रियाँ अपनी निजता और सांस्कृतिक पहचान खोकर नयी जगह के रीति-रिवाज और संस्कृति के अनुसार आचरण करने को विवश हो जाती हैं। आर्थिक हानि से उनके और उनके बच्चों की पोषण व स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतें पूरी होने में कठिनाई आती है। नयी जगह में वे घर और बाहर दोनों ही स्तरों पर असुरक्षित महसूस करती हैं। राज्य, जिसका दायित्व इन सभी समस्याओं का निवारण करना है, अपने पित्तृसत्तात्मक सोच और व्यवहार के कारण इन पर कोई ध्यान नहीं देता।

यहाँ हम भूमि अधिग्रहण की स्थिति में स्त्रियों की दृष्टि से विस्थापन और पुनर्वास संबंधी सरकारी नीतियों और क़ानूनों का संक्षिप्त जायज़ा लेंगे। इसके लिए हम यहाँ भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894, ओडिशा की पुनर्वास नीति-2006 तथा भूमि अधिग्रहण पुनर्वास पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता व उचित मुआवज़ा क़ानून-2013 के प्रासंगिक प्रावधानों की चर्चा करते हुए विस्थापित महिलाओं के प्रति उनके नज़रिये की समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं। इन तीनों के चुनाव के पीछे कुछ सुनिश्चित आधार रहे हैं।

पहला, भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894 के प्रावधानों के माध्यम से मैं भूमि अधिग्रहण और विस्थापितों के संदर्भ में एक औपनिवेशिक क़ानून के चरित्र को सामने लाने का प्रयास कर रही हूँ। अब तक यह सर्वविदित हो चुका है कि यह क़ानून वास्तव में अंग्रेजों द्वारा भारत में ज़मीन के मनमाने इस्तेमाल और लूट-खसोट को क़ानूनी जामा पहनाने का ज़रिया मात्र था। विस्थापन के शिकार लोगों के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था करने में तो यह क़ानून अक्षम था ही, लेकिन स्त्रियों के प्रति यह कितना उपेक्षापूर्ण रवैया रखता था। इसके विश्लेषण द्वारा यह भी सामने लाने का प्रयास किया गया है। भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894 की यह छोटी-सी समीक्षा वास्तव में यह बताने का प्रयास है कि देश को इस क़ानून की जगह क्यों एक ऐसे क़ानून की ज़रूरत थी जो न केवल विस्थापितों के समुचित पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन की चिंता करे बल्कि पूरी प्रक्रिया को भी न्यायपूर्ण बनाए और प्रभावित स्त्रियों के प्रति भी संवेदनशील नज़रिया रखता हो। **दूसरा,** ओडिशा पुनर्वास नीति-2006 का चुनाव राज्यों की पुनर्वास नीतियों के नमूने के तौर पर किया गया है। इसके विश्लेषण के माध्यम से मैंने राज्य सरकार द्वारा निर्मित पुनर्वास नीतियों में व्याप्त लैंगिक भेदभाव को सामने लाने का प्रयत्न किया है। इस नीति में स्त्री-विस्थापितों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है वह कमोबेश अधिकतर राज्यों की नीतियों में दिखाई देता है। **तीसरा,** भूमि अधिग्रहण पुनर्वास पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता व उचित मुआवज़ा क़ानून-2013 के विश्लेषण के माध्यम से मैं एक औपनिवेशिक क़ानून और एक लोकतांत्रिक सरकार द्वारा निर्मित क़ानून के बीच का अंतर दर्शाना चाहती हूँ। 2013 में निर्मित क़ानून के जिन प्रावधानों को प्रतिमान-परिवर्तन के रूप में देखा गया, उन्हें प्रस्तुत करते हुए मैं यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि यह प्रावधान केवल तत्कालीन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार की दरियादिली का परिणाम नहीं हैं बल्कि इनके निर्माण के पीछे उन जन-आंदोलनों का दबाव है जो चिपको आंदोलन से लेकर नर्मदा बचाओ आंदोलन, सिंगूर-नंदीग्राम आंदोलन, पॉस्को-वेदांता परियोजना विरोधी आंदोलन के रूप में आज भी सक्रिय हैं। गुलाम भारत की तुलना में आजादी के बाद के प्रबुद्ध नागरिक समाज तथा किसान-आदिवासी संगठनों की आवाज़ कितनी निर्णायक है, इसकी गूँज इन प्रावधानों में दिखाई देती है। साथ ही इस क़ानून की कुछ कमियाँ भी यहाँ दर्शाई गयी हैं जिन्हें दूर करना समय की माँग है। इस क़ानून की नारीवादी दृष्टि से की गयी आलोचना यह स्पष्ट करती है कि केंद्र सरकार द्वारा

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 236

निर्मित अभूतपूर्व भूमि अधिग्रहण क़ानून स्त्रियों के प्रति कितना संवेदनशील है और इस लिहाज़ से इसमें अभी भी क्या कमियाँ रह गयी हैं। इस भाग के अंत में नयी केंद्र सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण क़ानून-2013 में एक के बाद एक, दो अध्यादेशों द्वारा किये गये संशोधनों के परिणामस्वरूप स्त्री-हितों पर पड़ने वाले प्रभावों की संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

III

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं पुनर्संस्थापन नीतियों-क़ानूनों की नारीवादी समीक्षा

यह समीक्षा मुख्यत: तीन नीतियों-क़ानूनों पर आधारित है : भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894, ओडिशा की पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन नीति-2006 और नवनिर्मित भूमि अधिग्रहण पुनर्वास एवं पुनर्संस्थापन क़ानून।

भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894 : उषा रमानाथन के अनुसार यह क़ानून मुख्यत: एक औपनिवेशिक प्रवृत्ति का क़ानून है। जिसका एकमात्र लक्ष्य राज्य के 'एमिनेंट डोमन' [58] की शक्ति का अधिकाधिक विस्तार है।[59] इसके तहत राज्य जब चाहे 'सार्वजनिक-हित' और 'आपातकालीन' ज़रूरत के नाम पर किसी भू-स्वामी से उसकी भूमि छीन सकता है। दूसरों शब्दों में राज्य जब चाहे किसी व्यक्ति को प्राप्त सम्पत्ति के अधिकार का अतिक्रमण कर सकता है। अंग्रेज़ों द्वारा तीन चरणों में निर्मित इस क़ानून में विस्थापितों के पुनर्वास की कोई भी न्यायपूर्ण परिकल्पना वर्णित नहीं है।

बहरहाल, विस्थापित स्त्रियों के प्रति इस क़ानून में क्या दृष्टिकोण अपनाया गया है इसे जानने के लिए इस अधिनियम की भाग-8 धारा 45 (3) विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह धारा भू-स्वामी को अधिग्रहण को नोटिस देने से संबंधित है। क़ानून के अनुसार— 'यदि भू-स्वामी नोटिस देते समय घर पर नहीं हो, ऐसे में यह नोटिस घर के किसी अन्य 'वयस्क पुरुष' को दिया जाए अन्यथा नोटिस की प्रति घर के बाहरी दरवाज़े पर चिपका दिया जाएगा'।[60] दूसरे शब्दों में अधिग्रहण संबंधी नोटिस परिवार की वयस्क स्त्री को नहीं दिया जा सकता। हम स्वयं कल्पना कर सकते है कि जो क़ानून स्त्री को नोटिस पाने के योग्य तक नहीं समझता वह विस्थापन पूर्व उनकी सुरक्षा के प्रति कितना सचेत होगा।

ओडिशा पुनर्वास नीति-2006 : ओडिशा की पुनर्वास और पुनर्संस्थापन (आर ऐंड आर) नीति को हम देश के विभिन्न राज्यों में प्रभावी पुनर्वास व्यवस्था के उदाहरण के तौर पर ले सकते हैं। राज्य स्तर पर निर्मित यह नीति भी गम्भीर लैंगिक पूर्वाभासों और भेदभावों से भरी है। इस नीति के प्रावधान सेक्शन 2(एफ)(2) के तहत विस्थापित परिवार के प्रत्येक व्यस्क पुरुष को 'पृथक कुटुम्ब' का दर्जा देते हुए आर ऐंड आर स्कीम के लाभार्थी के रूप में स्वीकार किया गया है।[61] पुरुष की वैवाहिक स्थिति का इससे कोई संबंध नहीं है। परंतु यही समान प्रावधान परिवार की वयस्क स्त्रियों के लिए नहीं है। एक तरफ़ केवल वही स्त्रियाँ 'प्रथक कुटुम्ब' के रूप में लाभार्थी होंगी जो 30 की उम्र पूरी कर चुकी हैं। दूसरे परिवार की विवाहित बेटियाँ (वयस्क विधवा व तलाक़शुदा को छोड़कर) मुआवज़ें की अधिकारी नहीं होंगी।[62]

इस नीति में उद्योग एवं खनन परियोजनाओं के तहत ली गयी ज़मीन के बदले विस्थापितों को ज़मीन देने का कोई प्रावधान नहीं है। केवल एक से पाँच लाख तक का मुआवज़ा देने का प्रावधान है। यह राशि परिवार के मुखिया (जो अधिकांशत: पुरुष ही होता है) के बैंक खाते में भेजने का

---

[58] भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894, भाग-8 धारा 45(3).
[59] ओडिशा, पुनर्वास नीति-2006, भाग-2 (एफ)(2).
[60] वही, सेक्शन-2(एफ)(3).
[61] वही.
[62] वही.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 237

प्रावधान है। इसके अतिरिक्त पुनर्वास स्थल में जो आवास दिया जाएगा उस पर भी औपचारिक रूप से पुरुष की पत्नी का कोई अधिकार नहीं होगा।[52] उपरोक्त प्रावधानों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि राज्य स्तरीय आर ऐंड आर स्कीमें व नीतियाँ गम्भीर लैंगिक अन्यायों को बढ़ावा देती है। गुजरात और महाराष्ट्र की आर ऐंड आर नीतियाँ भी स्त्रियों के संदर्भ में लगभग यही तस्वीर पेश करती है।[63]

भूमि-अधिग्रहण, पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता एवं उचित मुआवज़ा अधिकार क़ानून-2013 : 119 साल पुराने-भूमि अधिग्रहण क़ानून-1894 का स्थान लेने वाला यह क़ानून गम्भीर विचार विमर्श और चर्चा का केंद्र रहा है। जहाँ इस क़ानून की अनेक आधारों पर आलोचनाएँ हुई[64] वहीं इसके कुछ प्रावधानों का स्वागत भी किया गया। जैसे— (1) बढ़े हुए मुआवज़े का प्रावधान— जिसमें ग्रामीण क्षेत्र भूमि के बदले चार गुना और शहरी क्षेत्र की भूमि के बदले बाज़ार भाव की दो गुना राशि देने का प्रावधान,[65] (2) 'प्रभावित कुटुम्ब' की परिभाषा का विस्तार जिसमें अधिगृहीत की जाने वाली भूमि पर आश्रित भूमिहीन, मज़दूरों, कृषकों, दस्तकारों आदि को 'प्रथक कुटुम्ब' के रूप में लाभार्थी माना गया है।[66] (3) अधिगृहीत की जाने वाले भूमि पर रहने वाले स्थानीय निवासियों की स्वीकृति है। (पीपीपी परियोजनाओं के लिए 70 प्रतिशत तथा निजी परियोजनाओं के लिए 80 प्रतिशत)[67] (4) सामाजिक आघात निर्धारण (एसआई ए) का प्रावधान (5)[68] खाद्य सुरक्षा संबंधी सुविधाओं का प्रावधान (6)[69] आदिवासियों के लिए विशेष प्रावधान आदि।[70]

स्त्री विस्थापितों के संदर्भ में भी यह क़ानून कुछ हद तक संवेदनशील दिखाई देता है।

(1) इसमें प्रभावित परिवार के सभी स्त्री पुरुषों को जो 18 वर्ष या इससे ऊपर की उम्र के हैं, को बिना किसी लैंगिक भेदभाव को, 'पृथक कुटुम्ब' के रूप में लाभार्थी माना गया है।[71]

(2) आर ऐंड आर की प्रक्रिया को स्त्रियों के लिए आसान तथा न्यायपूर्ण बनाने के लिए पुनर्वास पैकेज के निर्धारण के समय विस्थापित स्त्रियों की प्रतिनिधियों की राय लेने का प्रावधान किया गया है।[72]

(3) कुल 25 बुनियादी सुविधाओं की अनिवार्य व्यवस्था करने का प्रावधान है।[73]

(4) मुआवज़े के रूप में दिये जाने वाले मकान एवं भूमि पति-पत्नी दोनों के नाम पर करने का प्रावधान है।[74]

(5) आदिवासियों का पुनर्वास सामुदायिक/सामूहिक स्तर पर किये जाने का प्रावधान है। ताकि वे अपनी जातीय, भाषागत तथा सांस्कृतिक पहचान बनाए रख सकें।[75]

उपरोक्त प्रावधानों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यह क़ानून भूमि अधिग्रहण क़ानून-

---

[63] विस्तार के लिए देखें— गुजरात तथा महाराष्ट्र की पुनर्वास नीतियाँ.

[64] देखे, संजय चक्रवर्ती (2011) : 29-32.

[65] भूमि अधिग्रहण पुनर्वास एवं पुर्नर्संस्थान क़ानून 2013, अध्याय-1 धारा-3 (य-क-VII).

[66] वही.

[67] वही.

[68] वही.

[69] वही.

[70] वही, अनुसूची-2.

[71] वही, अध्याय-1, धारा-3 (ड), 61 (क) वही धारा-4, 61 (ख) वही-अनुसूची-3.

[72] वही, अनुसूची-1(X).

[73] वही, अनुसूची-2 (2).

[74] वसुधा धागमवर (1989) : 171-184.

[75] 22 जून, 2005 को ओडिशा सरकार ने दक्षिण कोरियाई स्टील कम्पनी 'पॉस्को' के साथ सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किये. इसके तहत प्रदेश के जगतसिंहपुर ज़िले में एक करोड़ बारह लाख टन वार्षिक उत्पादन क्षमता वाली स्टील प्लांट और परियोजना के लिए विशेष

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 238

1894,ओडिशा, गुजरात, महाराष्ट्र— की पुनर्वास नीतियों की अपेक्षा स्त्री-विस्थापितों के प्रति अपेक्षाकृत ज़्यादा संवेदनशील रवैया रखता है। हालाँकि यह क़ानून भी विस्थापित स्त्रियों की सभी समस्याओं को हल नहीं करता। कुछ समस्याएँ जैसे — (1) नक़द मुआवज़े पर परिवार के स्त्री व पुरुष दोनों के अधिकार की व्यवस्था का अभाव (2) स्त्रियों की आजीविका को पुनजीर्वित करने के प्रयास का अभाव (3) कॉमन प्रोपर्टी रिर्सोसेज़ छिन जाने से स्त्रियों को हुए नुक़सान की भरपाई की व्यवस्था न होना आदि।

वसुधा धागमवर ने अपने शोध में पाया है, 'ग्रामीणों और आदिवासियों को भूमि के बदले भूमि न देकर यदि नक़द मुआवज़ा दिया जाता है तो ऐसे भी ये लोग इतनी बड़ी धनराशि सँभालने के अभ्यस्त न होने के कारण सारा पैसा जल्द ही ख़र्च कर बैठते हैं। ओडिशा के हीराकुड बाँध परियोजना से विस्थापित आदिवासियों के बारे में यही देखा गया। मुआवज़े का पैसे उनके हाथों से ऐसे निकल गये जैसे छलनी में से पानी।'[76] ऐसे में स्त्रियाँ अपने और अपने परिवार के भविष्य को लेकर बेहद असुरक्षित महसूस करती हैं। नया भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन क़ानून भी स्त्रियों की इस चिंता का कोई समाधान नहीं दे पाया है। संक्षेप में कहें तो यह 'कुछ नहीं' से 'कुछ सही' परिवर्तन लाने वाला क़ानून है।

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता व उचित मुआवज़ा क़ानून-2013 में मोदी सरकार द्वारा अध्यादेशों के माध्यम से कुछ ऐसे संशोधन किये गये हैं जिनसे विस्थापन की मार झेल रहे लोगों के ज़ख़्म फिर से ताज़े हो गये हैं। इन संशोधनों के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा, रक्षा, ग्रामीण आधारभूत संरचना, औद्योगिक कॉरिडोर तथा सामाजिक आधारभूत संरचना का निर्माण जैसे पाँच उद्देश्यों के लिए किये जाने वाले भूमि अधिग्रहण के लिए अधिगहण से प्रभावित स्थानीय 70-80 प्रतिशत लोगों की सहमति की अनिवार्यता ख़त्म कर दी गयी। साथ ही विस्थापन के कारण उन्हें पहुँचाने वाले सामाजिक, आर्थिक और मानसिक आघात का निर्धारण करने के लिए अनिवार्य बनाए गये 'सामाजिक प्रभाव आकलन' (एसइए) का प्रावधान भी ख़त्म कर दिया गया। विपक्षी दलों द्वारा इन संशोधनों की भारी आलोचना और हंगामे के साथ-साथ किसानों तथा नागरिक समाज द्वारा उग्र विरोध प्रदर्शनों के बीच इन संशोधनों सहित नया भूमि अधिग्रहण विधेयक संसद के बजट सत्र में पेश किया गया। लोकसभा में इसे बहुमत से पारित करा लिया गया लेकिन राज्यसभा में अल्पमत के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका। बजट सत्र समाप्त होते ही सरकार ने पुन: एक नये अध्यादेश के रूप में इनमें से अधिकतर संशोधनों को लागू कर दिया है।

विस्थापन और पुनर्वास के संदर्भ में प्रमुख नारीवादी आलोचना यह रही है कि ऐसी ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियाँ जो विस्थापन से पहले प्राकृतिक संसाधनों से अपनी एक स्वतंत्र, बँधी-बँधाई आजीविका प्राप्त करती हैं, विस्थापन के बाद इन प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो कर आर्थिक रूप से पूरी तरह परिवार के पुरुषों पर आश्रित हो जाती हैं। भूमि अधिग्रहण पुनर्वास पुनर्संस्थापन में पारदर्शिता व उचित मुआवज़ा क़ानून-2013 में भी उनकी आय को पुनर्जीवित करने के प्रयास नहीं किये गये हैं। लेकिन इसके अध्याय दो की धारा-5 स्थानीय समुदायों को परियोजना के कारण पहुँचने वाली सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक क्षति की जानकारी के लिए 'सामाजिक प्रभाव

बंदरगाह बनाने का क़रार किया गया. इस परियोजना की अनुमानित क़ीमत 52 हज़ार करोड़ रुपये है. माना जा रहा है कि यह देश में अब तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की दृष्टि से सबसे बड़ी परियोजना है. राजस्व की अभिलाषा में उड़ीसा सरकार किसी भी क़ीमत पर परियोजना जल्द से जल्द शुरू करना चाहती है, जबकि इस परियोजना के कारण वहाँ की आबादी पर विस्थापन का ख़तरा मँडरा रहा है. 2005 से ही स्थानीय समुदायों द्वारा परियोजना का अनेक स्तरों पर विरोध किया जा रहा है. विस्तार के लिए देखें, पॉस्को व उड़ीसा सरकार के बीच का समझौता पत्र.

[76] 'मेमोरेण्डम ऑफ़ अंडरस्टैडिंग' के लिए यहाँ 'समझौता पत्र' का इस्तेमाल किया गया है.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 239

आकलन' को अनिवार्य बनाती है, जिससे हमें उम्मीद थी कि सामाजिक प्रभाव आकलन के लिए आयोजित लोक सुनवाइयों तथा परियोजना के लाभ-हानि विश्लेषण के दौरान स्त्रियाँ भी सामने आएँगी और भूमि अधिग्रहण तथा सम्भावित विस्थापन के कारण पहुँचने वाली अपनी व्यक्तिगत क्षति का ब्योरा देंगी। इससे सरकारी अलम्बरदार स्त्रियों की सदैव उपेक्षित रही परेशानियों को जान पाते और उनका हल निकालने की पहल होती। परंतु नयी सरकार द्वारा किये गये संशोधनों ने यह उम्मीद भी क्षीण कर दी है।

सरकार द्वारा रेखांकित पाँच उद्देश्यों के लिए किये जाने वाले भूमि अधिग्रहण के अंतर्गत जब सामाजिक प्रभाव का आकलन ही नहीं होगा तो पता कैसे चलेगा कि किसको कितनी क्षति हुई है? और जब क्षति का सटीक आकलन ही नहीं होगा तो उसकी भरपाई कैसे होगी? शायद सरकार यह भूल रही है कि उचित भरपाई के लिए स्पष्ट रूपरेखा का अभाव भविष्य में बड़े विद्रोहों को दावत दे सकता है। सीधी सी बात यह है कि ज़मीन वाले की तो ज़मीन जा रही है, चाहे रेखांकित पाँच उद्देश्यों के लिए हो या किसी अन्य प्रयोजन के लिए। ऐसे में प्रभावित लोगों को मुआवज़े के रूप में वह सब कुछ मिलना चाहिए जो उनका हक़ है और उनका कुल देय जानने के लिए जन-सुनवाई से सटीक रास्ता और कोई दिखाई नहीं देता। जन-सुनवाई की ताक़त नियमगिरी में चल रही वेदांता परियोजना के संदर्भ में देखने को मिली थी, जिसमें परियोजना की मंजूरी सरकार को वापस लेनी पड़ी थी। सरकार शायद जन-सुनवाई की इसी ताक़त से भयभीत है। एनसी सक्सेना समिति और मीना गुप्ता समिति की रपटों सहित अनेक रपटों में ओडिशा की पॉस्को परियोजना के संदर्भ में जनसुनवाई की प्रक्रिया ठीक से न अपनाने की बात सामने आयी थी। सरकार के साथ-साथ कॉरपोरेट शक्तियों को भी इस प्रक्रिया से दिक़्क़त रही है।

IV

विस्थापन विरोधी आंदोलन और स्त्रियाँ

विस्थापन विरोधी आंदोलनों में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी वास्तव में दमन और अन्याय का प्रतिकार करने की स्त्री-क्षमता की ही परिचायक है। सरदार सरोवर बाँध परियोजना के चलते जबरन भूमि अधिग्रहण और विस्थापन के ख़िलाफ़ चले नर्मदा बचाओ आंदोलन की बात हो, 1974 में उत्तराखण्ड के चमोली में हुआ चिपको आंदोलन हो, सिंगूर-नंदीग्राम में जबरन भूमि अधिग्रहण के ख़िलाफ़ खड़ा शक्तिशाली आंदोलन हो, जैतापुर का परमाणु संयत्र विरोधी आंदोलन हो, मध्य प्रदेश में हुआ जल सत्याग्रह हो अथवा वर्तमान समय में ओडिशा में पॉस्को परियोजना के ख़िलाफ़ चल रहा आंदोलन हो— सभी में स्त्री-आंदोलनकारी अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए सीधे संघर्ष करती नज़र आती हैं। विस्थापन की समस्या ने आदिवासी और किसान समुदायों को प्राप्त प्राकृतिक अधिकारों का एक सिरे से नकार दिया है। ऐसे में पहले से ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दोयम दर्जे का जीवन जी रही स्त्रियाँ इस निष्कर्ष पर पहुँच जाती हैं कि विस्थापन के बाद भारी आर्थिक अभावों के साथ आने वाली नयी सामाजिक-सांस्कृतिक और अस्मितागत समस्याओं के बीच उनकी स्थिति बद से बदतर होती चली जाएगी।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि धुर ग्रामीण और आदिवासी इलाक़ों में पॉस्को जैसी परियोजनाओं के माध्यम से पहुँचने वाला पूँजीवाद स्थानीय निवासियों के लिए भी आधुनिकीकरण और विकास के कुछ अवसर निश्चित रूप से सृजित करेगा। परंतु यह भी उतना ही सच है कि तरक़्क़ी के ये अवसर अत्यंत सीमित होंगे और पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना में यह पूरी तरह पुरुषों द्वारा हड़प लिए जाएँगे। विस्थापन-पूर्व अवस्था में स्त्रियों को पितृसत्ता के अधीन रह कर ही जो कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं— जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर प्राप्त अनौपचारिक अधिकार, वनोत्पाद तथा मछलियाँ आदि

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 240

स्त्री-आंदोलनकारियों का दुर्भाग्य यह है कि अब तक उन्हें मुख्य धारा के स्त्री-आंदोलन तथा नारीवाद का साथ नहीं मिल पाया है। जबकि विस्थापन विरोधी महिलाओं का मुद्दा केवल जबरन भूमि तथा सम्पत्ति हरण की मुख़ालफ़त करना नहीं है बल्कि समाज, विकास व पुनर्वास से जुड़े नीति-निर्माताओं तथा स्वयं राज्य की पितृसत्तात्मक सोच पर भी चोट करना है।

बेचकर कमाई गयी स्वतंत्र आय, सामुदायिक सुरक्षा, गरिमा एवं सम्मान— विस्थापन के बाद पूरी तरह ख़त्म हो जाएँगे। आदिवासी समाजों की स्त्रियाँ भी पितृसत्तात्मक समाजों में ही रहती हैं। अंतर केवल इतना है कि उनके ऊपर लादे गये नियम शेष भारत के पितृसत्तात्मक नियमों जितने कठोर नहीं होते। साथ ही उन्हें जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, वे उन्हें खोना नहीं चाहतीं। जब ये स्त्रियाँ विस्थापित हो कर बाहरी दुनिया में आती हैं तो इन्हें नयी जगह के रीति-रिवाज़ों और अपेक्षाकृत एक अलग तरह की पितृसत्ता के अनुसार स्वयं को ढालना पड़ता है। विस्थापन के स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभावों को देख कर सहज ही यह कहा जा सकता है कि विस्थापन विरोधी आंदोलनों में स्त्रियों का मुद्दा केवल अपने अस्तित्व और अपने परिवार को बचाए रखना नहीं है बल्कि विस्थापन के विरोध में उनकी लड़ाई वास्तव में उनकी अस्मिता बचाए रखने की भी लड़ाई है।

विस्थापन विरोधी स्त्री-आंदोलनकारियों का दुर्भाग्य यह है कि अब तक उन्हें मुख्य धारा के स्त्री-आंदोलन तथा नारीवाद का साथ नहीं मिल पाया है। जबकि विस्थापन विरोधी स्त्रियों का मुद्दा केवल जबरन भूमि तथा सम्पत्ति हरण की मुख़ालफ़त करना नहीं है बल्कि समाज, विकास व पुनर्वास से जुड़े नीति-निर्माताओं तथा स्वयं राज्य की पितृसत्तात्मक सोच पर भी चोट करना है। मुख्यधारा का नारीवाद भी पितृसत्तात्मक ढाँचे के ख़ात्मे की आकांक्षा से परिचालित होकर ही अस्तित्व में आया था। नारीवाद की उदारतावादी, मार्क्सवादी-समाजवादी तथा रेडिकल तीनों ही विचारधाराओं का लक्ष्य जेण्डर आधारित भेदभावों और अन्यायों से स्त्री को निज़ात दिलाना है।

नारीवाद की मार्क्सवादी धारा के अनुसार एक पितृसत्तात्मक समाज में पूँजीवाद स्त्रियों के उत्पीड़न को सघनता देता है।[77] इसे 'पूँजीवादी पितृसत्ता' का नाम दिया गया है। इन नारीवादियों ने यह भी माना है कि एक पितृसत्तात्मक समाज में राज्य स्त्री की यौनिकता नियंत्रित करके उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। विस्थापन विरोधी महिलाओं के प्रति राज्य तथा प्रशासन की कारवाई भी इसी सोच

[77] सुरंजिता रे (2001) : 51.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 241

की पुष्टि करती है।

सरदार सरोवर बाँध परियोजना के तहत बनने वाले महेश्वर बाँध के विरोध में किये गये आंदोलन, सिंगूर में टाटा की नैनो कार परियोजना के लिए जबरन भूमि अधिग्रहण के ख़िलाफ़ आंदोलन, ओडिशा में पॉस्को परियोजना के ख़िलाफ़ हो रहे आंदोलन आदि से प्राप्त साक्ष्य बताते हैं कि यहाँ स्त्री-आंदोलनकारियों का मनोबल तथा आत्मविश्वास तोड़ने के लिए न केवल उनका यौन उत्पीड़न व बलात्कार किया गया बल्कि प्रशासन तथा उसके गुण्डों द्वारा उसका प्रचार भी किया गया। ज़्यादातर पितृसत्तात्मक समाजों में स्त्री की यौनिकता तथा शुचिता अत्यंत संवेदनशील और गम्भीर मुद्दा होती है। संरक्षणकारी भूमिका निभाने वाली पितृसत्ता स्त्री को ऐसा कोई भी काम करने की अनुमति नहीं देती जिससे स्त्री की यौनिकता के समक्ष ख़तरा पैदा हो जाए। भारतीय समाज में भी हम देखते है कि अगर किसी स्त्री का बलात्कार हो जाता है तो वह स्त्री समाज की दृष्टि में भी हीन मान ली जाती है। कहा जाता है कि वह अपना 'सर्वस्व' खो चुकी है। उसकी 'इज़्ज़त' लुट गयी। अपनी 'इज़्ज़त खो चुकी' स्त्री समाज के सामने आने और अपनी ज़ुबान खोलने से भी कतराती है। यदि वह स्त्री अविवाहित है तो उससे आसानी से कोई विवाह करने के लिए तैयार नहीं होगा और यदि वह पहले से ही विवाहित है तो बलात्कार के बाद उसके परिवारिक संबंध बिगड़ने की भी पूरी सम्भावना होती है। आम तौर पर पुरुष किसी भी तरह से इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाता। वह इसे अपनी अमानत में ख़यानत के रूप में देखता है।

इसी मानसिकता का दोहन विस्थापन विरोधी स्त्रियों का मुँह बंद कराने के लिए किया जाता है। स्त्री-आंदोलनकारियों का यौन उत्पीड़न और बलात्कार एक तरफ़ जहाँ स्त्रियों को चुप कराने की कोशिश होती है वहीं घटना से उपजे डर के कारण सम्भावित विस्थापित परिवार अपने घर की स्त्रियों को विरोध आंदोलनों में शामिल नहीं होने देते। अस्सी के दशक में मध्य प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में बनने वाले महेश्वर बाँध का विरोध करने वाले स्थानीय आंदोलनकारियों जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों थे, को प्रशासन द्वारा गिरफ़्तार कर जेल में डाल दिया गया। बाद में पुलिस तथा प्रशासन द्वारा लोगों के बीच यह अफ़वाह फैलाई गयी कि जेल के लॉकअप से उन्हें इस्तेमाल किये गये कंडोम प्राप्त हुए हैं। यह सारा प्रचार केवल इसलिए था ताकि परियोजना से प्रभावित परिवार आंदोलन से अपनी स्त्रियों को वापस खींच लें। यहाँ विस्थापन विरोधी आदोलनों में स्त्रियों की भूमिका और उनके प्रति प्रशासन के रवैये के मूल्यांकन के लिए पॉस्को विरोधी आंदोलन को एक केस स्टडी के रूप में लिया गया है। यह अध्ययन मार्च, 2013 तक के विवरणों पर आधारित है।

ओडिशा की पॉस्को परियोजना, प्रतिरोध आंदोलन और स्त्रियों के मुद्दे

ओडिशा प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध राज्य रहा है। लेकिन सामाजिक, आर्थिक और मानव विकास की दृष्टि से इसकी गिनती देश के अत्यंत पिछड़े राज्यों में होती रही है। प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार के कारण ओडिशा के गंजाम, रायगढ़, जाजपुर, कालाहाण्डी आदि ज़िलों में टाटा स्टील, महानदी कोलफ़ील्ड, आदित्य एल्युमिनियम जैसी कई परियोजनाएँ पहले से चल रही हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में जिन दो बड़ी परियोजनाओं के कारण यह राज्य राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना, वे हैं कालाहाण्डी ज़िले की नियमगिरी पहाड़ियों में वेदांता एल्युमिनियम प्लांट परियोजना और जगतसिंहपुर ज़िले में पॉस्को स्टील प्लांट परियोजना। दोनों ही परियोजनाओं को लेकर राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार की भी अहम भूमिका रही है। वेदांता परियोजना को पर्यावरणीय कारणों और स्थानीय जनजातियों के हितों की सुरक्षा संबंधी कारणों से मंजूरी पर रोक लगा दी गयी जबकि इससे मिलते-जुलते दावों के बावजूद पॉस्को परियोजना को मंजूरी दे दी गयी। पॉस्को परियोजना के लिए 2006 के शुरू में जब भूमि अधिग्रहण का काम पहली बार शुरू हुआ तभी स्थानीय समुदायों ने इसका कड़ा

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 242

विरोध किया जिसमें बड़ी संख्या में स्त्रियाँ भी शामिल थीं। उसके बाद से लगातार सम्भावित विस्थापितों, स्वयंसेवी या ग़ैरसरकारी संगठनों और पर्यावरण कार्यकर्ताओं द्वारा परियोजना का विरोध किया जाता रहा है। स्थानीय समुदायों द्वारा संगठित विरोध के लिए पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति नामक संगठन को खड़ा किया गया जो लगातार संगठित रूप से परियोजना के ख़िलाफ़ विरोध-प्रदर्शन आयोजित कर रहा है। इसके अलावा अन्य स्थानीय संगठन नवनिर्माण समिति तथा भीता माटी बचाओ आंदोलन परियोजना को लगने से रोकने के लिए सक्रिय विरोध कर रहे हैं। संसद में वासुदेव आचार्य जैसे सांसदों ने पॉस्को परियोजना को मिलने वाली आर्थिक रियायतों, पर्यावरणीय चिंताओं और स्थानीय समुदायों के विस्थापन जैसे सवालों पर लम्बी बहस की है।[78] लेकिन राज्य सरकार सभी विरोधों और आपत्तियों को नज़रअंदाज़ कर पॉस्को परियोजना लगाने के अपने निर्णय पर अत्यंत दृढ़ और संकल्पबद्ध है। 22 जून, 2005 को जिस मेमोरेंडम ऑफ़ अंडरस्टैंडिंग (एमओयू) या सहमति पत्र पर हस्ताक्षर कर राज्य सरकार ने पॉस्को परियोजना को मंजूरी दी उसमें राज्य सरकार ने अपनी प्राथमिकताओं और ज़रूरतों को स्पष्ट करते हुए कहा, 'ओडिशा राज्य सरकार राज्य में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों को उपयोग करते हुए अधिकाधिक उद्योगीकृत करना चाहती है। राज्य सरकार ओडिशा के विभिन्न भागों में उद्योग स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। जिसका उद्देश्य ओडिशा की बदहाली को दूर करना और उन्हें समृद्ध बनाना है। इसी उद्देश्य से ओडिशा सरकार ऐसे सहयोगियों की पहचान करने की कोशिश में है जो यहाँ के कोयला भण्डार तथा लौह अयस्क का उचित प्रयोग करते हुए यहाँ एक नये इंटीग्रेटेड स्टील प्लांट की स्थापना करें।'[79] ओडिशा सरकार अपनी इन्हीं प्राथमिकताओं के कारण पिछले दस वर्षों में विभिन्न आयरन और स्टील कम्पनियों के साथ चालीस से अधिक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर कर चुकी है।[80]

लेकिन पॉस्को परियोजना का महत्त्व इन सबसे अधिक है। दक्षिण कोरिया स्थित दुनिया की चौथी सबसे बड़ी स्टील निर्माता कम्पनी पॉस्को (पोहांग स्टील कम्पनी) की जगतसिंहपुर में प्रस्तावित परियोजना ओडिशा सरकार के लिए अब तक की सबसे महत्त्वाकांक्षी परियोजना है। 51 हज़ार करोड़ रुपये (12 अरब डॉलर) की इस परियोजना को पूरे देश में अब तक का सबसे बड़ा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश माना जा रहा है, और राज्य सरकार किसी भी क़ीमत पर इसे छोड़ना नहीं चाहती।

पॉस्को डील : 22 जून, 2005 को ओडिशा सरकार ने दक्षिण कोरियाई स्टील कम्पनी पॉस्को (पोहांग स्टील कम्पनी) के साथ सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किये। इसके तहत ओडिशा के जगतसिंहपुर ज़िले की कुजांग तहसील के इरसामा ब्लॉक में एक करोड़ बीस लाख टन वार्षिक उत्पादन क्षमता वाला स्टील प्लांट और कम्पनी के उपयोग के लिए जटाधारी नदी के मुहाने पर एक बंदरगाह बनाने का क़रार किया गया। इसके अलावा सहमति पत्र के अनुसार कम्पनी अपनी परियोजना के लिए कई बुनियादी ढाँचे का निर्माण भी करेगी। जैसे खनन, परिवहन, टाउनशिप, जल आपूर्ति। इन सबके लिए कम्पनी को भारी मात्रा में भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता है। प्रस्तावित स्टील प्लांट और उससे जुड़ी परियोजना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है : जगतसिंहपुर ज़िले में 4004 एकड़ भूमि पर 12 मिलियन टन वार्षिक उत्पादन क्षमता वाला स्टील प्लांट और परियोजना के लिए विशेष बंदरगाह; सुंदरगढ़ तथा क्योंझर ज़िलों में फैली खण्डाधार खदान क्षेत्र में लौह अयस्क और कोयला खनन संबंधी परियोजना; खनन क्षेत्र तथा पारादीप बंदरगाह के बीच विशेष रेलवे लाइन तथा सड़क परियोजना; प्लांट एरिया के पास 1500 एकड़ और माइंस एरिया के पास 500 एकड़ भूमि पर टाउनशिप

---

[78] मानसी अशर (2009).

[79] विस्तार के लिए देखें, पॉस्को कम्पनी तथा ओडिशा सरकार के बीच 22 जून, 2005 को हस्ताक्षरित सहमति-पत्र (मेमोरेंडम ऑफ़ अंडरस्टैंडिंग).

[80] मानसी अशर (2009) : 7.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 243

परियोजना।[81]

सहमति पत्र के अनुसार सरकार ने भूमि संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा परियोजना की जल संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पॉस्को को महानदी नदी के जोबरा बैराज तथा कटक के नराज बैराज से लगभग 12 हज़ार से 15 हज़ार करोड़ लीटर पानी के इस्तेमाल की अनुमति दी है। तकनीकी विशेषज्ञों का मानना है कि इससे ओडिशा के कटक तथा पड़ोसी ज़िलों में पेयजल तथा खेती के लिए पानी के अभाव का संकट खड़ा हो सकता है।[82]

परियोजना को लेकर सबसे अधिक विवाद उस 4004 एकड़ भूमि पर है जिस पर पॉस्को का स्टील प्लांट और बंदरगाह की स्थापना होनी है। इस पूरी भूमि में प्राइवेट भूमि, तटीय भूमि और वन भूमि शामिल है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 4004 एकड़ भूमि में से 3566 एकड़ भूमि सरकारी भूमि है जिसमें 2958 एकड़ (83%) वनभूमि और 607.53 एकड़ (70%) वनेतर भूमि है, जबकि मात्र 438 एकड़ भूमि ही निजी भूमि है।[83] मीना गुप्ता की अध्यक्षता में गठित इस समिति में मीना गुप्ता और समिति के अन्य तीन सदस्यों ने दो अलग-अलग रपटें दी थीं। समिति के अन्य तीन सदस्यों ने मीना गुप्ता की रिपोर्ट के निष्कर्षों से असहमति जताई थी। सरकार और स्थानीय समुदायों के बीच मुख्य विवाद इस क्षेत्र की वन भूमि को लेकर रहा है। दो सरकारी समितियों की ही रिपोर्ट है कि परियोजना के लिए इस वन भूमि के अधिग्रहण के सरकार के फैसले से वन अधिकार क़ानून-2006 के प्रावधानों का उल्लंघन और इस क़ानून के तहत स्थानीय समुदायों को मिले अधिकारों का हनन हुआ है।[84]

वन अधिकार क़ानून-2006 का उल्लंघन : पॉस्को परियोजना के लिए चिह्नित भूमि पर स्थानीय समुदाय के लोग अनेक दशकों से अपने आवास और आजीविका के लिए आश्रित हैं। पान की खेती, काजू, धान, केवड़ा की खेती तथा मछली पकड़ने जैसी गतिविधियों से उन्हें वहाँ व्यापक रोज़गार मिला हुआ है। स्थानीय समुदायों द्वारा उस ज़मीन पर क़ानूनी अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से कई बार आवेदन किया गया लेकिन प्रशासन द्वारा उस पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। 2006 में वन अधिकार क़ानून बना। केंद्र सरकार का यह क़ानून वन भूमि पर निवास करने वालों को व्यापक अधिकार प्रदान करता है। इसके अनुसार इस अधिनियम का उद्देश्य उन सभी लोगों को अधिकार प्रदान करना है जो फॉरेस्ट ड्वैलिंग अनुसूचित जनजाति-सेक्शन 2(सी) तथा अन्य परम्परागत वनवासी के तहत आते हैं, कम से कम तीन पीढ़ियों से 13 दिसम्बर, 2005 तक वन अथवा वन भूमि पर रहते आये हैं और अपनी ज़रूरतों के लिए इस पर निर्भर हैं।[85] पॉस्को स्टील प्लांट और विशेष बंदरगाह के लिए आवश्यक कुल 4004 एकड़ भूमि में से सरकारी आँकड़ों के अनुसार 3096 एकड़ वन भूमि है।

2006-2007 में ओडिशा सरकार को उच्च तकनीकी क्षमता वाले उपग्रह से प्राप्त तस्वीरों के अनुसार यहाँ का सत्तर प्रतिशत क्षेत्र मुख्यत: वन भूमि है, जो विभिन्न प्रकार से वनों तथा पेड़ों से घिरा हुआ है। बाक़ी का पूरा क्षेत्र रेतीला क्षेत्र है जिस पर पान की खेती, कृषि कार्य तथा आजीविका से जुड़ी अनेक प्रकार की गतिविधियाँ की जाती है। साथ ही यहाँ एक बड़ा तटीय क्षेत्र भी है जो मैन्ग्रोव्ज़ से घिरा हुआ है जिन्हें हटाने से अथवा जिनकी ग़ैरक़ानूनी कटाई से बड़े चक्रवातों के समय तबाही फैलने का ख़तरा है।[86]

वन भूमि होने के बावजूद यहाँ के मुख्य आबादी वाले इलाक़ों में आदिवासी या अनुसूचित

---

[81] मानसी अशर (2009) : 9.

[82] *मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट* (2010) : 87.

[83] वही : 87.

[84] एन.सी. सक्सेना समिति और मीना गुप्ता समिति की रिपोर्ट.

[85] वन अधिकार अधिनियम-2006.

[86] दि पॉस्को इण्डिया स्टोरी रिसर्च रिपोर्ट : 23.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 244

जनजाति की आबादी बहुत कम है। 2006 की मतदाता सूची के अनुसार पोलांग गाँव में हेम्ब्रम और मुर्मू आदिवासी समुदायों के 21 सदस्य हैं। यह ज़िला प्रशासन के उस दावे के विपरीत है कि यहाँ एक भी आदिवासी नहीं है। लेकिन दलित या अनुसूचित जाति की आबादी यहाँ पूरी स्थानीय आबादी की एक तिहाई से भी ज़्यादा है। जैसा कि बताया गया है यहाँ पर लोग उन्नीसवीं सदी में वर्धमान रियासत के समय से ही पान की खेती करते आ रहे हैं। यहाँ पर बहुत से लोगों के पास वन भूमि पर निर्भरता से संबंधित 1920 के समय के काग़ज़ात सुरक्षित हैं।[87] इस तरह यह पूरी आबादी 'अन्य वनवासी' के रूप में वन अधिकार क़ानून के तहत मिले अधिकारों के लाभार्थी के रूप में मान्य है। इसके अलावा किसी परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण को लेकर इस क़ानून के तहत कुछ स्पष्ट प्रक्रियागत प्रावधान हैं, जिनका उचित ढंग से पालन नहीं किया गया है। इन प्रावधानों के अनुसार :

1. वन अधिकार अधिनियम के अंतर्गत यह प्रावधान है कि वन क्षेत्र में भूमि अधिग्रहण का निर्णय ग्राम सभा की सहमति से होगा।

2. वन क्षेत्र के निवासियों और विशेष रूप से ग्राम सभा के बीच पहले भूमि अधिग्रहण की योजना का प्रचार किया जाएगा, जागरूकता अभियान चलाया जाएगा और उन्हें मुआवज़ा और पुनर्वास का दावा करने के लिए पूरी तरह से प्रशिक्षित किया जाएगा।

3. मुआवज़ा और पुनर्वास का दावा करने के लिए तीन महीने का समय दिया जाएगा।

4. उनके पुनर्वास में उन्हें पहले से बेहतर जीवन-स्तर मुहैया कराया जाएगा और आजीविका के उपयुक्त विकल्प मुहैया कराए जाएँगे।

पॉस्को परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए ज़िला प्रशासन ने जिस हड़बड़ी और पुलिसिया ताक़त से काम लिया वह वन अधिकार अधिनियम का स्पष्ट उल्लंघन है। स्थानीय लोग और ग्राम सभाएँ शुरू से ही इस परियोजना के विरोध में थीं। इसे जानते हुए ज़िला प्रशासन ने परियोजना और पुनर्वास को लेकर ग्राम सभाओं के साथ सहमति बनाने की कोई गम्भीर कोशिश नहीं की। 23 मार्च, 2008 को लोकसुनवाई का कार्यक्रम रखा गया लेकिन साथ ही चारों तरफ़ पुलिस की टुकड़ियों को तैनात कर आतंक का माहौल बनाया गया। इन परिस्थितियों में परियोजना का विरोध कर रहे स्थानीय लोगों से मुआवज़ा और पुनर्वास का कोई दावा नहीं लिया गया, जो वन अधिकार क़ानून के तहत लेना अनिवार्य है। तीन महीने की अवधि बीत जाने के बाद ज़िला प्रशासन ने दावा करने की अवधि बीत जाने का हवाला देकर पुलिस की मदद से बलपूर्वक भूमि अधिग्रहण करना शुरू कर दिया।

इसके अलावा वनों से पेड़ों की अंधाधुंध कटाई का भी शुरू से ही पर्यावरण कार्यकर्ताओं द्वारा विरोध किया गया। परियोजना का विरोध कर रहे स्थानीय संगठन पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति ने भी स्थानीय लोगों को वन अधिकारों के अलावा वन संरक्षण अधिनियम की जानकारी दी और गोलबंद किया। इसके अलावा एक मुख्य मुद्दा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से पर्यावरण को होने वाले नुक़सान का है। जिस पर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने फ़ैसला दिया कि पेड़ों की कटाई तत्काल रोक दी जाए।[88]

परियोजना से प्रभावित आबादी : पॉस्को परियोजना के लिए होने वाले भूमि अधिग्रहण से जगतसिंहपुर ज़िले की तीन पंचायतों के अंतर्गत कुल 471 परिवारों को पूरी तरह से विस्थापित होना पड़ेगा।[89] जिनमें से

---

[87] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 64

[88] नेशनल ग्रीन ट्रिब्युनल ने ओडिशा निवासी सामाजिक कार्यकर्ता प्रफुलता सामंत रे की याचिका की सुनवाई करते हुए 28 जून, 2013 को फ़ैसला दिया था. साथ ही ओडिशा सरकार, केंद्र सरकार तथा पॉस्को इण्डिया को इस संबंध में नोटिस भी भेजा.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 245

(क) गड़कुजांग पंचायत के अंतर्गत पोलांग गाँव में 62 परिवार, भुयानपाल गाँव में 12 परिवार, नुलीयासाही गाँव में 135 परिवार,

(ख) ढिनकिया पंचायत के अंतर्गत ढिनकिया गाँव में 162 परिवार, गोविंदपुर गाँव में 90 परिवार,

(ग) नुआगाँव में पंचायत के अंतर्गत नुआगाँव गाँव में 10 परिवारों के प्रभावित होने की सम्भावना है।

इनमें से पोलांग और नुलीयासाही ऐसे दो गाँव हैं जो पूरी तरह से परियोजना क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इस कारण यहाँ की सौ फ़ीसदी आबादी विस्थापित हो जाएगी।[90] विस्थापन के अलावा परियोजना क्षेत्र के स्थानीय समुदायों के समक्ष आजीविका की समाप्ति का ख़तरा भी है।

इस कारण विस्थापितों के अलावा भी परियोजना से प्रभावित होने वाले लोगों की बहुत बड़ी आबादी है। इस परियोजना से कुल 4000 परिवारों की 22000 आबादी प्रभावित होगी।[91]

इसका सबसे प्रमुख कारण है यहाँ के स्थानीय समुदायों का अपनी आजीविका के लिए प्रकृति पर निर्भर रहना। उपलब्ध तथ्यों के अनुसार स्थानीय समुदायों की आजीविका मुख्य रूप से यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों मुख्यत: वनों, जलीय या तटीय भूमि तथा कृषि भूमि पर आधारित है। लोग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आजीविका के लिए पान की खेती, सुपारी, केवड़ा, काजू और धान की खेती तथा मछली पकड़ने जैसे व्यवसायों से जुड़े हैं।[92]

बर्धमान रियासत (19वीं सदी) के समय से ही स्थानीय समुदायों के लोग यहाँ की वनभूमि पर पान के पत्तों और काजू की खेती करते आ रहे हैं।[93]

इस भूमि पर अपने क़ानूनी एनटाइटलमेंट के लिए इन समुदायों द्वारा कई बार आवेदन दिया गया लेकिन सरकार तथा प्रशासन ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। पान की खेती वाली ज़मीनों के नियमन और व्यवस्था को लेकर सरकार ने कभी कोई पहल नहीं की। इस संबंध में अंतिम सेटलमेंट रिकॉर्ड 1984 में तैयार किया गया था और यह रिकॉर्ड केवल खेती की ज़मीनों के ज़रिये मिले रोज़गार को ही मान्यता प्रदान करता है। जबकि भूमि के अन्य इस्तेमाल जैसे कि काजू की खेती, वन्य उत्पाद तथा जलावन की लकड़ियों के एकत्रीकरण तथा मछली पकड़ना और मत्स्य पालन भी इसमें शामिल नहीं है।[94]

स्थानीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति : जगतसिंह ज़िले में परियोजना क्षेत्र की अधिकांश आबादी ग्रामीण है। यहाँ मात्र 10% शहरी आबादी है जो ओडिशा के औसत 15% से बहुत कम है। दूसरी तरफ़ यहाँ आबादी का घनत्व राज्य के औसत घनत्व (237 प्रति वर्ग किमी.) से बहुत ज़्यादा 633 वर्ग प्रति किमी.) है। यहाँ 40% परिवारों के पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि है। 30% के पास 1-2 हेक्टेयर, 8% के पास 2-4 हेक्टेयर और 3% परिवारों के पास 4 हेक्टेयर से अधिक भूमि है। जबकि 19% परिवार भूमिहीन हैं।

यहाँ साक्षरता 30-40% है। 11% पुरुष और 3% स्त्रियाँ ही इंटरमीडिएट या बारहवीं तक शिक्षा प्राप्त हैं। जबकि 6% पुरुष और 3% स्त्रियाँ ग्रेजुएशन या प्रोफ़ेशनल डिग्री तक पहुँच पाए हैं।[95] यह मुख्य रूप से एक ग्रामीण समाज का चित्र है। लेकिन यह पूरा क्षेत्र कालाहाण्डी जैसे ओडिशा के ग़रीबी और कुपोषण-ग्रस्त ज़िले से कोई समानता नहीं रखता। जगतसिंहपुर ज़िले का पूरा परियोजना क्षेत्र ग़रीबी और

---

[89] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 51.

[90] वही : 51.

[91] वही : 80, 87, 12.

[92] रिपोर्ट ऑफ़ एन इंडिपेंडेंट फ़ेक्ट फ़ाइडिंग टीम ऑन ओडिशा पॉस्को प्रोजेक्ट (2007).

[93] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 63.

[94] इंडिपेंडेंट फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग टीम (2007).

[95] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 80.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 246

कुपोषण की समस्या से मुक्त है। यहाँ के लोग मुख्य रूप से मध्यम आय वर्ग के लोग हैं। धान, पान और काजू जैसी परम्परागत फ़सलों की खेती और तटीय क्षेत्र में मछलियों की भरपूर उपलब्धता ने इनकी अर्थव्यवस्था को मजबूत बना रखा है। इससे एक तरफ़ इनको आजीविका प्राप्त है तो दूसरी तरफ़ भोजन में पोषण की गारंटी भी। पूर्व अनुसूचित जाति/जनजाति आयुक्त बी.डी. शर्मा ने दिसम्बर 2007 को इस क्षेत्र का दौरा करने के बाद पान, धान, माछ (मछली) को यहाँ के जीवन का आधार मानते हुए कहा, 'यहाँ के लोगों को प्राप्त त्रितत्व यानि पान-धान-मछली लोगों को जीवन का एसेंस प्रदान करते हैं।'[96] यहाँ की उपजाऊ मिट्टी, कृषि योग्य जलवायु तथा तालाबों और महानदी तथा जटाधारी नदी से मीठे पानी की उपलब्धता यहाँ के जनजीवन तथा अर्थव्यवस्था के लिए वरदान की तरह है।

पान की खेती : यहाँ की तीन पंचायतों की वन भूमि में लगभग 5000 पान की बेलें लगी हैं जिनसे लगभग 10,000 लोगों को रोज़गार मिला हुआ है।[97] पान की खेती परियोजना से प्रभावित परिवारों में से 68 फ़ीसदी परिवारों की आजीविका का मुख्य स्रोत है।[98] केवल गड़कुजांग ग्राम पंचायत की वन भूमि में लगभग 11 एकड़ (11.85 एकड़) भूमि पर पान की खेती होती रही है। इसके बारे में मीना गुप्ता समिति के तीन सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि इस भूमि के अधिग्रहण से वन अधिकार क़ानून-2006 का उल्लंघन हुआ है, 'ओडिशा सरकार द्वारा जुलाई, 2010 में गड़कुजांग ग्राम पंचायत की वन भूमि का अधिग्रहण किया गया। इस भूमि पर कुल 96 लोग पान की खेती करते थे। इस ज़मीन की क़ीमत लगभग 11.85 लाख प्रति एकड़ आँकी गयी। सरकार का यह क़दम वन्य अधिकार अधिनियम-2006 का स्पष्ट उल्लंघन है।'[99] मानसी अशर ने अपने अध्ययन में बताया है कि यहाँ पान की खेती से एक एकड़ भूमि पर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये की आय होती है। साथ ही पान की पैकिंग आदि अन्य सहायक कार्यों से भी प्रति एकड़ लोगों को एक लाख रुपये तक का रोज़गार प्राप्त होता है।'[100]

पान के खेतों या बेलों की इस भूमि पर बड़ी संख्या में लोग दिहाड़ी मज़दूर के रूप में काम करते हैं। पीपुल्स सोलिडेरिटी ग्रुप द्वारा स्थानीय लोगों से लिए गये साक्षात्कारों से पता चलता है कि सभी लोगों को, जब वे काम चाहते हैं, पान के खेतों में काम मिल जाता है। उनकी दैनिक आय काम की प्रकृति पर निर्भर करती है। पान के पत्ते तोड़ना, वहाँ की भूमि को पानी देना जैसे कार्यों से 150-160 रुपये, पान-खेती की भूमि तक बालू ले जाने और बालू में सरसों की खली मिश्रित कर भूमि पर परत बनाने जैसे कार्यों के लिए 170-200 रु. और पान की नयी फ़सल के लिए पान के नये पौधों को रोपने जैसे कार्य के लिए 220-240 रु. की मज़दूरी मिल जाती है। इस मज़दूरी के अलावा दैनिक श्रमिकों को दो वक़्त का भोजन भी दिया जाता है।[101]

इस पूरे क्षेत्र के बहुत से भूमिहीन परिवार पान के पत्ते तोड़ने, टोकरी बनाने और पान के पत्तों की पैकिंग आदि के द्वारा ही अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं।

मछली पालन और मछली पकड़ना : इस क्षेत्र के लोगों को यहाँ के मीठे पानी के तालाबों से भी व्यापक रोज़गार मिला हुआ है। यहाँ के लगभग आधे (50%) परिवार मछली पालन के काम से भी जुड़े हैं। यहाँ के तालाबों में वे बड़ी मात्रा में झींगा मछली पालते हैं।[102] प्रति एकड़ तालाब क्षेत्र से यहाँ एक वर्ष में सात लाख रुपये मूल्य की मछलियों का उत्पादन होता है। इसके अलावा जटाधारी नदी के मुहाने

---

[96] मानसी अशर (2009) : 12.
[97] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 82.
[98] वही : 62.
[99] वही : 82.
[100] मानसी अशर (2009) : 12.
[101] दि पॉस्को इण्डिया स्टोरी रिसर्च रिपोर्ट : 50.
[102] मानसी अशर (2009) : 12.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 247

पर मछली पकड़ने का व्यवसाय यहाँ की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है जिससे बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार मिला हुआ है। इस क्षेत्र का मछुआरा समुदाय पूरी तरह से इस पर निर्भर है। गड़कुजांग पंचायत के नुलीयासाही गाँव के तो सभी 108 परिवार इसी काम से जुड़े हैं। और इस काम से प्रतिदिन की इनकी आय 100 रुपये से लेकर पाँच हज़ार रुपये तक है। यहाँ की मछलियाँ स्थानीय बाज़ारों और नज़दीकी शहर कटक के बाज़ारों में भेजी जाती हैं।[103] जटाधारी नदी के मुहाने पर परियोजना के लिए बनने वाले विशेष बंदरगाह से मछुआरा समुदाय की पूरी आजीविका नष्ट हो जाने वाली है। लेकिन पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन स्कीम में उनके अधिकारों को मान्यता नहीं दी गयी है।[104] इसके अलावा धान की खेती, काजू की खेती और केवड़े की खेती में भी लोगों को रोज़गार मिला हुआ है। कुछ लोगों के पास अपनी कृषि-भूमि है जबकि बहुत से लोग खेतिहर मज़दूर है, जो दूसरे के खेतों या वन भूमि पर काम करके अपनी तथा अपने परिवार की आजीविका चलाते हैं। इस क्षेत्र की एक तिहाई से अधिक आबादी दलित या अनुसूचित जातियों की है, जबकि बहुत कम संख्या में आदिवासी भी हैं।

यह पूरा क्षेत्र ग्रामीण और वन क्षेत्र होने के कारण यहाँ की पूरी आबादी मुख्यत: स्थानीय आबादी है। इस हिसाब से यहाँ की लगभग आधी आबादी वयस्क-अवयस्क महिलाओं की है जिसमें विवाहित-अविवाहित स्त्रियाँ, बालिकाएँ, विधवाएँ, तलाक़शुदा और वृद्ध स्त्रियाँ शामिल हैं। विस्थापन और आजीविका के छिन जाने की पूरी मार इस पूरी महिला आबादी पर भी समान रूप से पड़ने वाली है। बल्कि पारिवारिक सम्पत्ति पर नियंत्रण के अभाव और मुआवज़े और पुनर्वास की योजनाओं में महिलाओं की समस्याओं की उपेक्षा होने के कारण महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में और अधिक विषम होने वाली है।

पॉस्को परियोजना और स्त्रियाँ : सामाजिक-आर्थिक स्थिति

जगतसिंहपुर ज़िला स्थित पॉस्को परियोजना क्षेत्र की जनसंख्या मुख्यत: ओडिशा के ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए इस क्षेत्र की सामाजिक स्थिति ग्रामीण समाज के अनुरूप ही है। यहाँ से पारादीप बंदरगाह मात्र 12 किमी. दूर है और उद्योग धंधों के कारण वह मुख्यत: शहरी क्षेत्र है। लेकिन कुजांग तहसील की उन तीनों पंचायतों में, जो पॉस्को परियोजना का क्षेत्र है, उस शहरीकरण का प्रभाव न के बराबर है। शिक्षा की दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति देखें तो यहाँ मात्र 3% स्त्रियाँ ही बारहवीं तक की शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं। और लगभग तीन प्रतिशत ही ग्रेजुएशन पूरा कर पाती हैं।[105] इसका एक बहुत बड़ा कारण इस पूरे क्षेत्र का वनों और तटीय क्षेत्र से घिरा होना है। लेकिन यही भौगोलिक स्थिति एक तरफ़ शिक्षा और शहरीकरण की दिशा में स्त्रियों को ले जाने में बाधक है तो दूसरी तरफ़ उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में सहायक भी सिद्ध हुई हैं। वनों और तटीय क्षेत्र से आजीविका प्राप्त होने के कारण यहाँ की स्त्रियाँ बहुत हद तक आत्मनिर्भर हैं। और वे घरेलू अर्थव्यवस्था में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। पान की खेती को इस पूरे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा कह सकते हैं। पान की खेती और उससे जुड़े कार्यों में बड़ी संख्या में स्त्रियाँ शामिल हैं और इस पूरे परियोजना क्षेत्र में स्त्रियों को सर्वाधिक रोज़गार पान की खेती और इससे जुड़े कार्यों (मसलन पान के पत्ते तोड़ना, टोकरी बनाना, पान की पैकिंग करना आदि) में ही मिला हुआ है।[106] धान की खेती से भी स्त्रियाँ प्रमुखता से जुड़ी हुई हैं। धान की खेती यहाँ चावल के निजी उपभोग के लिए भी की जाती है। इस

---

[103] मानसी अशर (2009) : 13.
[104] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 39.
[105] वही : 80.
[106] वही : 80-87.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 248

जबरन भूमि अधिग्रहण का विरोध कर रहे आंदोलनकारियों को प्रशासन द्वारा तैनात सैन्य टुकड़ियों का दमन झेलना पड़ा। गोविंदपुर गाँव में सैन्य टुकड़ियों की तैनाती तथा सरकार व प्रशासन द्वारा आंदोलनकारियों के प्रति अन्यायपूर्ण रवैये के विरोध में 'पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति' के नेतृत्व में 7 मार्च, 2013 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की पूर्व संध्या पर स्त्री आंदोलनकारियों द्वारा विरोध प्रदर्शन किया गया।

तरह खाने का मुख्य अनाज चावल उन्हें बाहर से नहीं ख़रीदना पड़ता और इससे घरेलू बचत होती है।

लगभग यही स्थिति मछली पालन और मछली पकड़ने जैसे व्यवसायों में भी है। आदिवासी और ग्रामीण समाजों में आर्थिक गतिविधियों में घर के स्त्री व पुरुष के बीच बहुत स्पष्ट कार्य-विभाजन नहीं होने के कारण आर्थिक गतिविधियों में स्त्रियाँ स्वत: ही जुड़ जाती हैं। मछली पकड़ने जैसे कार्यों से स्त्रियाँ मुख्यत: इसी रूप में जुड़ी हुई हैं। मछली उनके भोजन का प्रमुख अंग है और इस तरह वे घरेलू उपभोग के लिए भी इस कार्य से जुड़ी हैं।

इसके अलावा यहाँ की स्त्रियाँ अपनी घरेलू ज़रूरतों की कई वस्तुओं के लिए स्थानीय वन क्षेत्र पर आश्रित हैं। भोज्य पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किये जाने वाले आलू तथा अन्य सब्जियाँ तथा कई तरह के फल ये वनों से प्राप्त करती हैं। वनों से फल व सब्ज़ियाँ लाने का कार्य मुख्य रूप से स्त्रियाँ ही करती हैं। इस तरह प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त इन उत्पादों का इस्तेमाल स्त्रियाँ अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था चलाने के लिए करती हैं। निश्चित रूप से इस क्षेत्र में जो स्त्रियाँ आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी हैं उन्हें भूमि का स्वामित्व प्राप्त नहीं है। पान की बेलों वाली भूमि तथा धान के खेतों की वह मालिक नहीं हैं। भूमि का एनटाइटलमेंट कहीं है तो वह मुख्य रूप से पुरुषों के नाम पर ही है। स्त्रियों को जिस क्षेत्र में सबसे ज़्यादा रोज़गार प्राप्त है, वह है पान की खेती और उसमें स्त्रियाँ मुख्य रूप से कृषि श्रमिक के रूप में जुड़ी हैं, जिन्हें दैनिक कार्यों के आधार पर आमदनी होती है। एक तरफ़ इसमें एक दिन में 150-240 रु. तक दैनिक आय मिलती है, [107] वही दूसरी तरफ़ यह काम प्राय: सभी मौसमों में साल भर थोड़े बहुत अंतराल के बाद मिलता रहता है।

स्त्रियों को इस क्षेत्र में मिलने वाली आजीविका और घरेलू उपयोग की कई चीज़ों की वनों से प्राप्ति की क्षतिपूर्ति पॉस्को परियोजना के कारण स्थानीय अर्थव्यवस्था के नष्ट होने और इनके विस्थापन के बाद पुनर्वास की स्थिति में नहीं की जा सकती।

---

[107] द पॉस्को इण्डिया स्टोरी रिसर्च रिपोर्ट : 32.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 249

पॉस्को परियोजना प्राधिकरण द्वारा पुनर्वास का जो पैकेज तैयार किया गया है। उसे देखते हुए यह ठीक ही कहा गया है कि 'आर ऐंड आर पैकेज पहले से ही वंचित और हाशियाकृत वर्गों, ख़ासतौर से स्त्रियों, वृद्धों और बच्चों की ज़रूरतें पूरी करने में पूरी तरह से असफल रहा है। जबकि इन वर्गों के पास आजीविका के वैकल्पिक साधनों का पहले से ही अभाव रहा है। पॉस्को परियोजना से प्रभावित होने वाली ग्रामीण स्त्रियाँ मुख्य रूप से पान के खेतों पर काम करने वाली कृषक मज़दूर हैं। न तो इनके पास अपनी भूमि है और न ही इनके पास किसी तरह की शैक्षिक तथा तकनीकी योग्यता है ताकि इन्हें पॉस्को जैसे उच्च तकनीकी कम्पनी में किसी तरह का रोज़गार मिल सके।' [108]

स्त्रियों द्वारा पॉस्को परियोजना का विरोध क्यों? : ओडिशा में प्रस्तावित पॉस्को परियोजना के विरोध में खड़े हुए व्यापक जन आंदोलन में महिलाओं ने प्रारम्भ से ही सशक्त भूमिका निभाई है। भूमि अधिग्रहण के चलते अपनी आजीविका खो देने के डर से ये स्त्रियाँ आंदोलन में बढ़ चढ़कर भूमिका निभा रही हैं। विरोध में शामिल अधिकांश स्त्रियाँ अपनी आजीविका के लिए पान की बेलों पर आश्रित भूमिहीन स्त्रियाँ तथा मछुआरा समुदाय की दलित भूमिहीन स्त्रियाँ हैं। [109]

3 फ़रवरी 2013 से ढिनकिया पंचायत के गोविंदपुर गाँव में भूमि अधिग्रहण तथा पान की बेलों को हटाए जाने का कार्य दोबारा शुरू कर दिया गया। साथ ही साथ गाँव में स्थिति को पूरी तरह नियंत्रित करने के उद्देश्य से यहाँ पुलिस (पैरामिलिटरी फ़ोर्स) की 12 टुकड़ियाँ तैनात कर दी गयीं। प्रशासन द्वारा जबरन भूमि अधिग्रहण का विरोध कर रहे आंदोलनकारियों को प्रशासन द्वारा तैनात सैन्य टुकड़ियों का दमन झेलना पड़ा। [110] गोविंदपुर गाँव में सैन्य टुकड़ियों की तैनाती तथा सरकार व प्रशासन द्वारा आंदोलनकारियों के प्रति अन्यायपूर्ण रवैये के विरोध में 'पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति' के नेतृत्व में 7 मार्च, 2013 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की पूर्व संध्या पर महिला आंदोलनकारियों द्वारा विरोध प्रदर्शन किया गया।

स्त्रियों द्वारा 7 मार्च 2013 को किया गया यह प्रदर्शन अब तक का सबसे उग्र प्रदर्शन था। प्रदर्शन के दौरान तीन स्त्री आंदोलनकारियों ने अर्धनग्न होकर जगतसिंहपुर ज़िले के गोविंदपुर गाँव के नज़दीक भागलपाड़ा पैरामिलिटरी स्टेशन के सामने प्रदर्शन किया। [111] इन आंदोलनकारियों पर पुलिस द्वारा लाठीचार्ज किया गया जिसमें 35 महिलाओं को गम्भीर चोटें आयीं। एक स्त्री आंदोलनकारी के दिल्ली से घटना स्थल पर पहुँची विशेषज्ञों की टीम को दिये गये साक्षात्कार के अनुसार 'आप बताइए, हम और कितनी मार बर्दाश्त कर सकते हैं? हम लोग पूरी तरह से भूमिहीन हैं और इसी ज़मीन पर मज़दूरी करके गुज़र बसर करती हैं। जब-जब हमने पॉस्को के ख़िलाफ़ आंदोलन किया है तब तब सरकार ने हमारी आवाज़ दबाने के लिए लाठी का प्रयोग किया है। मैं इस अवस्था में नहीं हूँ कि विस्तार में कुछ बता सकूँ। मैं केवल अपने शरीर पर लगी चोटों के निशान दिखा सकती हूँ।' [112]

लाठीचार्ज के साथ ही निर्वस्त्र होकर विरोध कर रही स्त्रियों के ख़िलाफ़ पुलिस द्वारा नारी का अशोभनीय प्रस्तुतीकरण (प्रतिबंध) अधिनियम के तहत केस दर्ज किया गया तथा प्रोजेक्ट के समर्थकों द्वारा पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति को नेतृत्व प्रदान करने वाले अभय साहू के ख़िलाफ़ प्राथमिकी भी दर्ज कराई गयी। मिनती दास के अनुसार, 'आंदोलनकारियों पर सैनिक कार्यवाही करते हुए उन्हें जेलों में ठूँसना और उन पर लाठीचार्ज करने के माध्यम से सरकार आंदोलन को दबाने का एक अत्यंत घिनौना व

---

[108] मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010) : 88.
[109] मनोरंजन मोहंती, सुमित चक्रवर्ती तथा अन्य (2013) : 7.
[110] वही : 7
[111] मिनती दास (2013) : 3.
[112] मनोरंजन मोहंती, सुमित चक्रवर्ती और अन्य (2013) : 7.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 250

अलोकतांत्रिक तरीक़ा अपना रही है। और वो भी तब जब स्त्रियाँ और बच्चे आंदोलन के अग्रिम मोर्चे पर हैं। अर्ध सैनिक बलों द्वारा स्त्रियों पर लाठीचार्ज और दुर्व्यवहार यहाँ लगभग एक नियमित घटना बन गयी है।'[113] पुलिस टुकड़ियों की तैनाती तथा आंदोलनकारियों की लगातार होती गिरफ़्तारियों के कारण वहाँ आतंक का माहौल बना हुआ है। पुलिस द्वारा पूरे क्षेत्र में धारा 144 लागू कर दी गयी। स्थानीय समुदायों के लोग अपनी दैनिक ज़रूरतों तथा स्वास्थ्य संबंधी निदानों के लिए भी गाँव से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। मिनती दास के शब्दों में- 'यहाँ के निवासी महीनों से बाज़ार नहीं जा पाए हैं। वे अपने रिश्तेदारों से मिलने नहीं जा सकते। यहाँ तक कि डॉक्टर के पास जाने के लिए भी मनाही है। यह स्थिति ख़ासतौर से उन स्त्रियों के लिए विशेष रूप से पीड़ादायक है जो अपने प्रतिदिन के कामकाज के लिए गाँव के भीतर और बाहर आने जाने के लिए विवश होती हैं।'[114]

स्त्रियों द्वारा पॉस्को परियोजना के विरोध का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि यहाँ स्त्रियाँ मुख्य रूप से अपने परिवार की आजीविका बचाने के उद्देश्य से परियोजना का विरोध कर रही हैं। उनके विरोध के मुद्दे पारिवारिक हैं व्यक्तिगत नहीं। यहाँ यह कहना भी ग़लत नहीं होगा कि स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले आंदोलन में भी सरदार सरोवर बाँध परियोजना के ख़िलाफ़ स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले आंदोलन की भाँति ही विस्थापन के संदर्भ में स्त्री केंद्रित मुद्दे सामने नहीं आये हैं। स्त्रियों चिंताएँ पारिवारिक स्तर की हैं। विस्थापन के कारण उन्हें पहुँचने वाले सम्भावित नुक़सान के प्रति ये स्त्रियाँ सम्भवत: जागरूक ही नहीं हैं। आंदोलन में स्त्रियाँ शामिल हैं, परंतु स्त्री मुद्दे पूरी तरह से ग़ायब हैं। जैसा कि देखा गया कि विस्थापन होने के बाद स्त्रियाँ सिर्फ़ स्त्री होने के कारण व्यक्तिगत स्तर पर विस्थापन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक दुष्प्रभावों को झेलने के लिए विवश होती हैं। निश्चित तौर पर ऐसा लगता है कि पॉस्को का विरोध कर रही स्तिरयों को इन सम्भावित ख़तरों के प्रति कोई जानकारी नहीं है।

दूसरे, पॉस्को का विरोध कर रही स्त्री आंदोलनकारियों की आंदोलन की निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में कोई भागीदारी नहीं है।[115] सम्भवत: इस कारण से भी इस आंदोलन में स्त्री से जुड़े मुद्दे शामिल नहीं हो पाए हैं।

तीसरे, यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि विरोध कर रही स्त्रियों का प्रेरणास्रोत क्या है? स्त्रियों द्वारा अर्धनग्न होकर किये जाने वाले विरोध प्रदर्शन से ठीक एक दिन पहले पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति के अध्यक्ष अभय साहू द्वारा प्रशासन की यह चेतावनी दी गयी थी कि यदि गोविंदपुर क्षेत्र में तैनात सैन्य टुकड़ियों को प्रशासन द्वारा वापस नहीं बुलाया गया तो 7 मार्च, 2013 को स्थानीय स्त्रियाँ अर्धनग्न होकर प्रदर्शन करेंगी।[116] यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आंदोलन के पुरुष मुखिया के इस बयान को क्या हम पितृसत्ता द्वारा लिए गये फ़ैसले के रूप में नहीं देख सकते जो महिलाओं के बारे में फ़ैसले लेना अपना अधिकार समझती हैं? क्या हम अभय साहू की इस चेतावनी को स्त्री आंदोलनकारियों की निर्णय संबंधी स्वायत्तता के ह्रास के रूप में नहीं देख सकते?

महिलाओं द्वारा किये गये विरोध प्रदर्शन का विश्लेषण करने पर हम देख सकते हैं कि प्रथम, स्त्रियाँ पारिवारिक चिंताओं के कारण परियोजना का विरोध कर रही हैं, स्त्री संबंधी चिंताओं के कारण नहीं। द्वितीय, स्त्रियाँ मात्र बड़ी संख्या में आंदोलन में मौजूद हैं, निर्णय निर्माण प्रक्रिया में शामिल सक्रिय सदस्यों के रूप में नहीं। तृतीय, पॉस्को विरोधी आंदोलन की तुलना यदि सरदार सरोवर बाँध

---

[113] मिनती दास : 3.

[114] वही : 3.

[115] मनोरंजन मोहंती, सुमित चक्रवर्ती और अन्य (2013) : 7.

[116] वही : 7.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 251

परियोजना के ख़िलाफ़ स्त्रियों के आंदोलन से करें तो हम पाते हैं कि दोनों ही जगह आंदोलन में स्त्री मुद्दों को कोई स्थान नहीं मिला। चौथे, स्त्री आंदोलनकारी पितृसत्तात्मक निर्णयों के अधीन होकर अपनी भूमिका निभा रही हैं।

V

कुछ बुनियादी समस्याएँ

विडम्बना यह है कि प्रतिरोध आंदोलनों के दौरान इतनी बड़ी क़ीमत चुकाने के बाद भी स्त्रियों के बलिदानों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। न तो इन्हें आंदोलन की सफलता का श्रेय दिया जाता है और न ही लाभों में ही इन्हें हिस्सेदार बनाया जाता है। बड़ी संख्या में स्त्रियों की भागीदारी होने के बाद भी निर्णय निर्माण के स्तर पर स्त्रियों को शामिल नहीं किया जाता। पॉस्को प्रतिरोध संग्राम समिति इसका प्रमुख उदाहरण है। अभय साहू के नेतृत्व वाली इस समिति में निर्णय-निर्माण के स्तर पर किसी भी स्त्री आंदोलनकारी को महत्त्व नहीं दिया गया है।

यह भी दुर्भाग्य ही है कि विस्थापन विरोधी आंदोलनों में स्त्रियाँ तो शामिल होती हैं परंतु स्त्रियों के मुद्दे पूर्णत: ग़ायब होते हैं। आंदोलनों के भीतर भी विस्थापित या सम्भावित विस्थापित स्त्रियों को पहुँचने वाली व्यक्तिगत क्षति का मूल्यांकन नहीं किया जाता। न ही उनकी क्षतिपूर्ति आंदोलन की भागों में शामिल होती है। ख़ुद स्त्रियाँ अपनी सम्भावित समस्याओं से अनभिज्ञ होती हैं। स्त्री आंदोलनकारी अपनी पारिवारिक ज़मीन तथा आजीविका छिनने का विरोध करती हैं परंतु एक पितृसत्तात्मक समाज में 'विस्थापित स्त्री' होने के नाते उन्हें जो समस्याएँ[117] हो सकती हैं, उनके बारे में जानकारी देने वाला कोई नहीं होता। स्वयं 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' तक में स्त्रियों के मुद्दों को कोई जगह नहीं मिल पायी। विडम्बना यह है कि मुख्यधारा के नारीवाद को भी इन विस्थापित स्त्रियों से कोई लेना देना नहीं है।

स्त्री विस्थापितों के संदर्भ में एक बड़ी समस्या है शोधरत राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय तथा सरकारी जाँच समितियाँ द्वारा स्त्रियों की अनदेखी। यदि पॉस्को परियोजना का उदाहरण लें तो हम देखेंगे की पॉस्को विरोधी आंदोलन ने बड़े पैमाने पर राजनीतिक समुदाय, मीडिया तथा बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। पर्यावरणविद, अर्थशास्त्री, ग़ैर-सरकारी संगठन तथा शोधार्थी अपने-अपने तरीक़े से परियोजना का अध्ययन कर रहे हैं। सामाजिक शोधकर्ताओं की टीमें भी परियोजना स्थल पर पहुँची हैं। कई सरकारी समितियों ने भी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की हैं। पॉस्को परियोजना पर किये गये महत्त्वपूर्ण शोधों में मानसी अशर द्वारा प्रस्तुत शोध विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने शोध में मानसी ने पॉस्को परियोजना के क़ानूनी आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक पक्षों का विस्तार से वर्णन करते हुए परियोजना के प्रभावों (सम्भावित) का भी स्पष्ट ब्यौरा दिया है।[118]

एक अंतर्राष्ट्रीय शोध समूह— 'माइनिंग जोन पीपल्स सॉलिडेरिटी ग्रुप' की 9 सदस्यीय टीम ने भी 2010 में परियोजना स्थल पर जाकर शोधकार्य किया। ग़ौरतलब है कि इन 9 सदस्यों में दो स्त्री शोधकर्ता भी शामिल थीं।[119] इस शोध समूह ने 65 पन्नों की अपने रिपोर्ट में परियोजना और उसके विरोध में खड़े आंदोलन का बारीक़ विश्लेषण प्रस्तुत किया।

---

[117] इन समस्याओं से तात्पर्य मुख्य रूप से विस्थापन के दौरान और उसके बाद विस्थापित ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों के समक्ष आने वाली समस्याओं से है. इन समस्याओं का वर्णन शोध-पत्र के भाग-1 में विस्तार से किया गया है.

[118] मानसी अशर (2009).

[119] माइनिंग ज़ोन पीपल्स सॉलिडेरिटी ग्रुप (2010).

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:55 PM Page 252

वर्ष 2010 में ही सरकार द्वारा इस परियोजना के मूल्यांकन के लिए दो कमेटियाँ गठित की गयीं। पहली कमेटी एक सदस्यीय एन.सी. सक्सेना कमेटी [120] थी तथा दूसरी कमेटी पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा गठित चार सदस्यीय मीना गुप्ता कमेटी थी। [121] इस कमेटी के द्वारा 255 पृष्ठों की दो रिपोर्ट पेश की गयी। जिसमें एक रिपोर्ट स्वयं मीना गुप्ता द्वारा अकेले लिखी गयी। [122] दूसरी कमेटी के अन्य तीन सदस्यों द्वारा लिखी गयी थी। इसके अतिरिक्त 9 मार्च 2013 को 12 सदस्यों की एक 'स्वैच्छिक शोध संगठन' टीम परियोजना स्थल पहुँची। इस टीम में मानव अधिकार कार्यकर्ता, पत्रकार, शिक्षाविद, लोकतांत्रिक अधिकार तथा नागरिक कार्यकर्ता शामिल थे। इस टीम ने अपना शोध पॉस्को विरोधी जनसंघर्ष पर फ़ोकस किया। इस टीम की रिपोर्ट में पॉस्को विरोधी संघर्ष के इतिहास पर क्रमबद्ध रूप से प्रकाश डालते हुए राज्य सरकार तथा स्थानीय प्रशासन के दमनकारी व्यवहार की भर्त्सना की गयी। [123] इस टीम ने अपनी रिपोर्ट— 'हाइटेंड टेन्शन इन पॉस्को प्रोजेक्ट एरिया : ए फ़ैक्ट फाइंडिग रिपोर्ट' के नाम से जारी की। प्रोफ़ेसर मनोरंजन मोहंती इस टीम के नेतृत्वकर्ता रहे।

त्रासदी यह है कि केवल इस टीम की रिपोर्ट को छोड़कर अन्य किसी भी शोध रिपोर्ट में आंदोलनकारी स्त्रियों की स्थिति पर विस्तारपूर्वक बात नहीं की गयी है। विडम्बना यह है कि स्त्री सदस्यों से युक्त टीम ने भी आंदोलनकारी तथा सम्भावित विस्थापित स्त्रियों के प्रति तटस्थ रवैया अपनाया। ऐसे में कैसे कल्पना की जा सकती है कि इन स्त्रियों के मुद्दे संबंधित नीति निर्माताओं के सामने आएँगे ?

निष्कर्ष और सुझाव

विस्थापन के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन करते हुए हमने देखा कि किस प्रकार विस्थापन स्त्रियों को 'वंचितों में वंचित' की स्थिति में ला पटकता है। उस पर से पुनर्वास तथा पुनर्संस्थापन नीतियों में व्याप्त लैंगिक भेदभाव ताबूत में कील ठोकने का काम करते हैं।

बावजूद इसके इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जब एक प्रारम्भिक समाज आधुनिकता का सामना करता है तो उसके मिश्रित परिणाम निकलते हैं। लाइला मेहता, हरिमोहन माथुर तथा एस.परशुरामन के विस्थापन पर किये शोध बताते हैं कि विस्थापन ने ग्रामीण व आदिवासी स्त्रियों को उनके परम्परागत आवास स्थान से हटाकर एक तरफ़ जहाँ जीवन में भूचाल ला दिया, वहीं दूसरी तरफ़ सीमित स्तर पर ही सही उन्हें परम्परागत रूढ़ियों से निजात भी दिलायी। विस्थापन के बाद मैदानी तथा शहरी क्षेत्रों में पुनर्वासित स्त्रियों पर एक तरफ़ जहाँ रूढ़िगत सामाजिक दबावों में कमी आयी, वहीं दूसरी तरफ़ यहाँ पाइपलाइन द्वारा पानी की सप्लाई, आटा मिलों की उपलब्धता जैसी सुविधाओं तथा खेती कार्यों से निजात से स्त्रियों के श्रम की भी बचत हुई। जिसे वह विस्थापन पूर्व नदियों से पानी भर के लाने, आटा पीसने, खेती का काम करने में लगाती थी। इस काम को विस्थापन के बाद स्त्रियों ने पुनर्वास स्थल में कपड़े सिलने तथा सूत कातने जैसी गतिविधियों में लगाया। जिससे कुछ हद तक ही सही, किंतु उनकी आजीविका पुनर्जीवित हुई। लेकिन यहाँ यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि पुनर्वास स्थल में प्राप्त संसाधनों को लाभ में बदलने के पीछे स्त्रियों का अपना संकल्प और इच्छा-शक्ति थी न कि राज्य या प्राधिकरण की कोई अग्रगामी योजना या प्रयास।

---

[120] एन.सी. सक्सेना कमेटी रिपोर्ट (2010).

[121] मीना गुप्ता कमेटी रिपोर्ट (2010).

[122] वही.

[123] मनोरंजन मोहंती, सुमित चक्रवर्ती और अन्य (2013).

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:56 PM Page 253

राज्य तथा परियोजना प्राधिकरण केवल मुआवज़ा देकर विस्थापितों की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेते हैं जबकि आवश्यकता यह है कि राज्य तथा परियोजना प्राधिकरण द्वारा विस्थापितों की आजीविका को पुनर्जीवित करने के प्रयास किये जाएँ तथा स्त्रियों को विस्थापन के बाद भी वही आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सुविधाएँ और बेहतर तरीक़े से उपलब्ध कराई जाएँ जो उन्हें विस्थापन से पहले प्राप्त थीं। यह उनका अधिकार भी है और एक लोकतांत्रिक राज्य का दायित्व भी।

संदर्भ :

अमर्त्य सेन (2009), 'डिवेलपमेंट एज़ केपेबिलिटी एक्सपेंशन', ए.के. शिवकुमार (सम्पा.), *हैंडबुक ऑफ़ ह्यूमन डिवेलपमेंट,* यू.एन.डी.पी., ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

उषा रमानाथन (2011), 'द लैण्ड एक्विज़ीशन, एमिनेट डोमेन ऐंड द बिल— 2011, *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 14, अंक 44 & 45.

एस. परशुरामन (1999), *द डिवेलपमेंट डिलेमा : डिसप्लेसमेंट इन इण्डिया,* मैक्मिलन प्रेस लिमिटेड, लंदन.

कैमिला स्टाइवर्स (1993), *जेण्डर इमेजिज़ इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : अ लेजिटिमेट एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट.*

गांगुली ठुकराल (1989) (सम्पा.), *डिवेलपमेंट, डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट इन नर्मदा वैली,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस. नयी दिल्ली.

चित्ररूपा पालित (2009), 'डिस्प्लेसमेंट, जेण्डर जस्टिस ऐंड पीपुल्स स्ट्रगल,' लाइला मेहता (सम्पा.), *डिस्प्लेस्ड बाई डिवेलपमेंट : कंफ्रंटिंग मार्जिनलाइज़ेशन ऐंड जेण्डर इन जस्टिस,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

जॉन रॉल्स (1971), *ए थियरी ऑफ़ जस्टिस,* द बैकनेप प्रेस ऑफ़ हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, यूएसए.

नाइला कबीर (1994), *रिवर्स्ड रियलिटीज़,* काली फॉर वुमॅन, नयी दिल्ली.

पी.एन. भगवती (2013), *वाई ग्रोथ मैटर्स : हाउ इकॉनॉमिक ग्रोथ इन इण्डिया रिड्यूस पॉवर्टी ऐंड द लैसन फॉर अदर डिवेलपिंग कंट्रीज़,* द बैकनेप प्रेस ऑफ़ हावर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, यूएसए.

पॉस्को कम्पनी तथा ओडिशा सरकार के बीच 22 जून, 2005 को हस्ताक्षरित सहमति-पत्र (मेमोरेंडम ऑफ़ अंडरस्टैडिंग).

बी. मोर्स और टी. बर्जर (1992), *सरदार सरोवर : रिपोर्ट ऑफ़ द इनडिपेंडेंट रिव्यू* : ओटावा आर.एफ.आई.

भास्वती दास तथा विमल खाबास (2009), *जेण्डर इश्यूज इन डिवेलपमेंट : कंसर्न फॉर ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी,* रावत पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

मनोरंजन मोहंती, सुमित चक्रवर्ती तथा अन्य (2013) 'हाइटेंड टेंशन इन पॉस्को प्रोजेक्ट एरिया : फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग रिपोर्ट, संहाती.

माइकल सर्निया (1997), 'द रिस्क ऐंड रिकन्स्ट्रक्शन मॉडल फॉर रिसेटलिंग डिस्प्लेस्ड पॉपुलेशन', *वर्ल्ड डिवेलपमेंट,* 25 (10).

माइनिंग ज़ोन पीपल्स सॉलिडेरिटी ग्रुप (2010), *आइरन ऐंड स्टील : द पॉस्को इण्डिया स्टोरी,* http//minigrome.org.

मानसी अशर (2009), *स्ट्राइकिंग वाइल द आइरन इज़ हॉट,* नेशनल सेंटर फॉर एडवोकेसी स्टडीज़, नयी दिल्ली.

मिनाती दास (2013), *ढिनकिया ऐंड गोविंदपुर मदर्स गो नेकिड टू प्रोटेस्ट अगेन्स्ट पॉस्को,* संहाती.

मीना गुप्ता समिति रिपोर्ट (2010), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार : 87 (रिपोर्ट मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध है).

रिपोर्ट ऑफ़ एन इंडिपेंडेंट फ़ैक्ट फ़ाइडिंग टीम ऑन ओडिशा पॉस्को प्रोजेक्ट (2007), *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड XLV, अंक 21.

लाइला मेहता (2009), 'द डबल बाइंड', लाइला मेहता (सम्पा.), *डिस्प्लेस्ड बाई डिवेलपमेंट : कंफ्रंटिंग मार्जिनलाइज़ेशन ऐंड जेण्डर इन जस्टिस,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

लाइला मेहता (सम्पा.), *डिस्प्लेस्ड बाइ डिवेलपमेंट : कंफ्रंटिंग मार्जिनलाइज़ेशन ऐंड जेण्डर इन जस्टिस,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

14_muskan_Layout 1 6/3/2015 3:56 PM Page 254

वॉल्टर फ़र्नांडीज़ (सम्पा.) (1989), *डिवेलपमेंट, डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिहैबलिटेशन,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

वॉल्टर फर्नांडीज़ और इनाक्षी गांगुली ठुकराल (1989) (सम्पा.), *डिवेलपमेंट, डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट इन नर्मदा वैली,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस. नयी दिल्ली.

वसुधा धागमवर (1989), 'रिहैबिलिटेशन : पॉलिसी ऐंड इंस्टीट्यूशनल चेंज़ रिक्वायर्ड', वॉल्टर फर्नांडीज़ और इनाक्षी गांगुली ठुकराल (1989) (सम्पा.), *डिवेलपमेंट, डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट इन नर्मदा वैली,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस. नयी दिल्ली.

सत्यजीत सिंह, ज्याँ ड्रेज़ और मीरा सैमसन (1997), *द डैम ऐंड द नेशंस : डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट इन नर्मदा वैली,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

संजय चक्रवर्ती (2011), 'अ लॉट ऑफ़ स्केप्टिज़म ऐंड सम होप' *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड XLVI, अंक 41.

सी. पालित और पी. मोदी (1992) 'ऑन द ट्राइबल पाथ', सबामिटिड टू द इनडिपेंडेंट रिव्यू ऑफ़ द सरदार प्रोजेक्ट, फ़रवरी 1992.

सुरंजिता रे (2001) 'नारीवादी सिद्धांत : एक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य', साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता (सम्पा.) नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे में, नई दिल्ली, हिंदी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, नयी दिल्ली : 51.

हरिमोहन माथुर (2009) 'जेण्डर बाइसनेस इन रिसेटलमेंट प्लानिंग', लाइला मेहता (सम्पा.), *डिस्प्लेस्ड बाई डिवेलपमेंट : कंफ्रंटिंग मार्जिनलाइज़ेशन ऐंड जेण्डर इन जस्टिस,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.